स्वदेशी पत्रिका

वर्ष–21, अंक–9, भाद्रपद–आश्विन 2070, सितम्बर 2013

संपादक
विक्रम उपाध्याय

कार्यालय
धर्मक्षेत्र, सेक्टर–8, बाबू गेनू मार्ग
रामकृष्णपुरम्, नयी
दिल्ली–110022
से प्रकाशित
दूरभाष : 011–26184595
स्वदेशी जागरण समिति की ओर से ईश्वर दास महाजन द्वारा कॉम्पीटेंट बाइन्डर्स (प्रिंटिंग यूनिट), नवीन शाहदरा, दिल्ली–32 से मुद्रित।

आवरण कथा–4

भारत की समस्या सिर्फ रुपये का गिरना नहीं है। आने वाले दिनों की तस्वीर और भयावह लग रही है। क्योंकि घरेलू मोर्चे पर उद्योग व्यापार और यहां तक कि सेवा क्षेत्र भी औंधे मुंह गिरे हुए हैं. . .हालात यह है कि अब केबिनेट मंत्री ही अब उद्योगों के लिए राहत पैकेज मांगने लगे हैं।

कवर पेज

अ नु क्र म

आवरण कथा :

अर्थव्यवस्था पर लगी वोट की चोट
– विक्रम उपाध्याय /4

अभिमत : रुपए को खा गया विदेशी निवेश
– डॉ. भरत झुनझुनवाला /7

सामयिकी : डॉलर के मुकाबले रुपए में कमजोरी : आर्थिक निर्णयों में राजनीति प्रमुख कारण
– डॉ. सूर्य प्रकाश अग्रवाल /9

विमर्श : श्रमिक शक्ति से रुपए को बनाए मजबूत
– पवन कुमार /11

डॉलर बनाम रुपया : मैं हूँ रुपया
– उमाशंकर मिश्र /12

अर्थव्यवस्था : कैसे सुधरेगी अर्थव्यवस्था!
– निरंकार सिंह /14

खाद्य सुरक्षा विधेयक :

जमाखोरी और कालाबाजारी बढ़ाएगा खाद्य सुरक्षा विधेयक
– महक सिंह /16

समस्या

भोजन देने भर से नहीं मिटेगी कुपोषण की समस्या
– मुकुल श्रीवास्तव /18

कृषि : आखिर कब तक रहेंगे किसान बदहाल...!
– सुभाष चन्द्र कुशवाहा /20

धरोहर : बढ़ते शहर और दम तोड़ती भाषाएं
– उमेश चतुर्वेदी /27

पर्यावरण : विनाश नहीं – विकास का कारण हो बाँध
– भारत डोगरा /29

लेख : स्वतंत्रता से वंचित क्यों...?
– रेणु पुराणिक /31

पुस्तक समीक्षा : भारतीय अर्थव्यवस्था का दर्पण
– विद्यानन्द आचार्य /33

सुरक्षा : अस्थिर पड़ोस और हमारा राजनय
– जवाहरलाल कौल /35

पाठकनामा/2, समाचार परिक्रमा/22, रपट/36

पाठकनामा

योजनाएं लागू करने से पहले वितरण प्रणाली दुरुस्त करनी चाहिए

सरकार ने खाद्य सुरक्षा बिल संसद में पास करवा लिया है। देखा जाए तो कुछ हद तक तो ठीक हैं परन्तु खाद्य सुरक्षा विधेयक में जिस सार्वजनिक वितरण प्रणाली को आधार बनाया है वह शुरू से ही भ्रष्टाचार की भेंट चढ़ा हुआ है। जमाखोरी, कालाबाजारी और बेईमानी करना राशन डीलरों द्वारा किया जाता रहा है। अब फिर से उन्हें जमाखोरी और बेईमानी करने का मौका दिया जा रहा है।

देखा जाए सार्वजनिक वितरण प्रणाली की दुकानों पर न तो कोई स्टॉक की कोई जानकारी होती है और न ही राशन आने की कोई सूचना। अकसर देखा गया है कि सुबह राशन की दुकान पर गेहूं, चीनी, चावल बाँटा जाता है शाम तक खत्म हो जाता है। जबकि काफी राशन कार्डधारियों का राशन शेष रह जाता है। फिर लोगों से यह कह दिया जाता है कि राशन खत्म हो गया। सरकार कहती है कि राशन डीलरों पर पूरा राशन भेजा जाता है तो फिर राशन डीलर अपने स्टॉक का विवरण अपने नोटिस बोर्ड पर क्यों नहीं लिखते साथ ही नोटिस बोर्ड यह भी लिखा हो कि इतने राशन कार्डधारियों ने राशन ले लिया है और इतने शेष है। खाद्य सुरक्षा बिल को लाभ जनता को तभी मिलेगा जब सार्वजनिक राशन वितरण प्रणाली की दुकानों पर उनके नोटिस बोर्ड पर स्टॉक का विवरण लिखा हो अन्यथा जमाखोरी और भ्रष्टाचार का जन्म होगा आखिर में बेचारा गरीब ही मारा जाता है।

– यशंवत सिंह कठैत, ब्लॉक ए–1, अमृत विहार, बुराड़ी

चुनाव के समय ही जनता का दर्द याद आता है

आज आए दिन अखबारों में नेताओं की चर्चा आ रही है। शहर में जो गली बरसों नहीं बनी थी अब बनने लग गई है, जो मंत्री विधायक मिलते नहीं थे अब जनता के द्वार पर पहुंच रहे है। मंत्री और विधायक का जनता पर यह प्रेम हर बार की तरह चुनाव तक सीमित रहता है हर बार जनता अपने आपको ठगा से महसूस करती है। देश में घोटालों, भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, सरकारी बाबूओं द्वारा शोषण आजादी के 66 सालों से आज तक जारी है। कभी देश कृषि प्रधान देश होता था। आज कृषि जमीन अवैध प्लाटों और बिल्डर माफियों ने हड़प ली है। किसान भी बिल्डर माफियों के चक्कर में आकर अपना पैतृक व्यवसाय खो चुका है। जहां सरकार को कृषि व्यवसाय को आगे बढ़ाने के लिए कई नीतियां बनानी चाहिए है, वही सरकार किसानों को आत्महत्या करने पर मजबूर कर रही है। कृषि ऐसा व्यवसाय है जो प्रत्येक भारतीयों को रोजगार दे सकता है। जनता को अब ऐसी सरकार चुननी चाहिए जो देशहित और आर्थिक विकास के साथ–साथ कृषि क्षेत्र को भी सोचे।

– मुकेश कुलियाल, सेक्टर–3, आरके पुरम्, नई दिल्ली

आवश्यक नहीं कि इस अंक के भीतर प्रस्तुत लेखकों के विचार स्वदेशी पत्रिका के संपादक मंडल के विचारों से मेल खाते हों। पाठकों की जानकारी के लिए उन्हें यहां प्रस्तुत किया जा रहा है।

संपादकीय कार्यालय

''धर्मक्षेत्र'' शिव शक्ति मन्दिर, सैक्टर–8, रामकृष्णपुरम्, नयी दिल्ली–110022

दूरभाष : 011–26184595 • ई–मेल : swadeshipatrika@rediffmail.com

अगर आप घर बैठे स्वदेशी पत्रिका चाहते हैं तो डिमांड ड्राफ्ट, मनीऑर्डर अथवा चेक द्वारा शुल्क *'स्वदेशी पत्रिका'* दिल्ली के नाम भेजने का कष्ट करें।

वार्षिक सदस्यता शुल्क : 150 रुपए

आजीवन सदस्यता शुल्क: 15,00 रुपए

यदि शुल्क भेजने के उपरांत भी आपको पत्रिका समय पर उपलब्ध नहीं हो पा रही है तो तुरंत पत्रिका कार्यालय को सूचित करें।

या आप सीधे बैंक ऑफ इंडिया, खाता नं. 602510110002740

IFSC : BKID 0006025 (Ramakrishnapuram)

उन्होंने कहा

मौजूदा आर्थिक हालात के लिए रिजर्व बैंक को जिम्मेदार ठहराना ठीक नहीं। मुझे उम्मीद है कि वित्तमंत्री भी एक दिन कहेंगे कि भगवान का शुक्र है कि रिजर्व बैंक है।

– डी. सुब्बाराव

भारत को ईरान से तेल आयात बढ़ाना चाहिए, क्योंकि वह भारतीय मुद्रा में भुगतान लेने को तैयार है।

– आदित्य बिड़ला, अर्थशास्त्री

लोकप्रिय बटोरने वाली खाद्य सुरक्षा बिल, मनरेगा और तेल व खाद पर सब्सिडी वाली योजनाओं से देश की स्थिति को देखते हुए फिलहाल परहेज करना चाहिए।

– सुरजीत भल्ला
सीएमडी ऑक्सस इन्वेटमेंट

अगर सरकार का बस चलता तो यह हवा पर भी कर लगा देती, इस पर सब्सिडी देती, नियंत्रण रखती, नियमन करती, राशन के तहत वितरित करती फिर लोगों को अधिक सांस लेने पर फटकारती।

– चेतन भगत

लोकसभा अपराधियों को चुनाव लड़ने से प्रतिबंधित करने के सुप्रीम कोर्ट के फैसले को पलट रही है। देखा जाए यह पूरा राजनीतिक तबके के लिए शर्म की बात है।

– किरण बेदी

देश में जो स्थिति है उस हिसाब से मोदी ही प्रधानमंत्री की कुर्सी पर बैठने के योग्य हैं। देश में जहां जाओ लोग कहते हैं मोदी लाओ देश बचाओ।

– बाबा रामदेव

संपादकीय

नए नेतृत्व की चुनौतियां व संभावनाएं

देश में आम चुनाव की आहट तेज हो गई है। लोगों में भावी सरकार को लेकर बहस और चर्चा का दौर तेज हो गया है। कयास लगाने वाले भी बाजार में उतर गए हैं। अगली सरकार की दिशा और दशा क्या होगी। पिछले पांच साल में देश जिन रास्तों पर चला है, उस पर ही आगे हम बढ़ेगे या फिर कुछ आमूल चूल परिवर्तन होंगे। 135 करोड़ की जनसंख्या को लेकर कोई वृहत योजना बनेगी या फिर कुछ खास लोग, वर्ग या व्यक्ति को ही प्रमुखमता मिलेगी। जिन व्याधियों से हमारा प्रशासन तंत्र ग्रसित है उसे दूर किया जाएगा या फिर नई सरकार खुद को उसी में झोंक देगी। कौन होगा इस बड़े बदलाव का सूत्रधार? देश के सामने विकल्प अभी से प्रस्तुत कर दिया गया है। जनता इस बार व्यक्ति नहीं नीति को प्राथमिकता देगी। जिन नीतियों पर सरकार अभी चल रही है, उसका परिणाम सिर्फ बरबादी के रूप में सामने आया है। न सिर्फ आर्थिक दुश्वारियां बढ़ी है, बल्कि सामाजिक ताना बाना और परंपरा का भी हनन हुआ है। हमारा जीडीपी ही नींचे नहीं आया है, बल्कि शासनिक नैतिकता भी तेजी से गिरी है। शासन में ईमानदारी या मेधा की घोर अपेक्षा हुई, तो चापूलसों को भरपूर ईनाम मिला। भ्रष्टाचार उदाहरण न होकर शासन पद्धति का हिस्सा बन गया। जहां बेइमानी या लूट खसूट की आंच प्रधानमंत्री कार्यालय तक पहुंच गया। देश की आर्थिक संप्रभुता दाँव पर लगा दिया गया। अपनी खामियों को ढ़कने और असफलता पर परदा डालने के लिए सरकार ने अर्थव्यवस्था को ही खोखला बना दिया। देश लूटता रहा और सरकार आंख बंद किए बैठी रही। कमजोर नेतृत्व का फायदा विदेशी कंपनियों और सरकारों ने उठाया। भारत को दबाव में लाकर नीतियों में मनमाफिक बदलाव करा दिया। चाहे वह विदेशी कंपनियों से जुड़े 'कर' के मामले हों या 'खुदरा व्यापार' जैसे अति संवेदनशील क्षेत्र में विदेशी निवेश का मामला। भारत की मान मर्यादा को कभी इटली ने ध्वस्त किया तो कभी अमरीका ने। सरकार किंकर्त्तव्य विमूढ़ बनी रही। एक के बाद एक घोटाले हुए और मंत्री अधिकारी आराम से बच गए। देश दुबारा इन परिस्थितियों को जन्म होने देना नहीं चाहेगा। अगली सरकार किसी ऐसे व्यक्तित्व के नेतृत्व में बननी चाहिए, जिसनी नीतियों में धार हो और लागू करने का दम हो। जिसे भारत और भारतीयों की संभावनाओ पर भरोसा हो और जो विदेशी पूंजी पर निर्भर रहने के बजाय घरेलू पूंजी निर्माण को प्राथमिकता दें। जिसके लिए बड़े उद्योगपति या निवेशक महत्वपूर्ण हो तो छोटे उद्यमियों के लिए भी सम्मान का भाव हो। किसानों या मजदूरों के प्रति सिर्फ दया का भाव न हो, बल्कि यह अहसास हो कि वे भी विकास के भागीदार हैं। जिन्हें सिर्फ कागजों में अंकित योजनाओं की सांत्वना न मिले, बल्कि उनके हाथ को सीधे काम मिले और काम का उचित ईनाम मिले। देश का नेतृत्व वह व्यक्ति करे जिस पर किसी आका का दबाव न हो, जिस पर किसी को खुश करने का भार न हो। नेतृत्व करने वाला व्यक्ति देश की आर्थिक संपदा का अपनों के बींच बंदरबाट न करे और खजाना लूट कर अपना घर न भरे। पिछले दस वर्षों में भारत में विश्व पटल पर जिस तरह से अपनी पहचान खोयी है, उसे दुबारा हासिल किया जाए। भारत की धाक एशियाई देशों के बीच फिर कायम हो और इसकी आवाज सभी अंतरराष्ट्रीय मंच पर सुनाई दे। अमरीका और रूस की तरह भारत की भी राय अंतरराष्ट्रीय मामलों में ली जाए। पिछले कुछ सालों में भारत ने अपनी साख न सिर्फ अंतरराष्ट्रीय मंचों पर खोई है, बल्कि पाकिस्तान और बांग्लादेश जैसे हमारे पड़ोसियों ने भी आंखे दिखानी शुरू कर दी है। चीन अपना दबदबा लगातार बना रहा है। भारत सरकार और भारतीय सेना का मजाक उड़ाता रहा है। नई सरकार और नये नेतृत्व में इतना दम होना चाहिए कि उसकी हुंकार इन पड़ोसियों को सुनाई दें और वे हमारी सीमा या हमारी संप्रभुता में अपनी टांग अड़ाने से पहले बीस बार सोंचे। भारत का 60 करोड़ युवा यह माने की इस देश में उसके लिए रोजगार हो, उसकी दक्षता और क्षमता का उपयोग है उसके लिए आदर्श स्थिति है और उसका भविष्य यहां उज्जवल है। यह अहसास देश की नई सरकार यदि देने में सफल रहे तो फिर से भारत आर्थिक महाशक्ति और चरित्रवान लोगों का आकर्षण बन जाएं।

अर्थव्यवस्था पर लगी वोट की चोट

हालात नियंत्रण से बाहर, भारत की विश्वसनीयता पर बट्टा

भारत की समस्या सिर्फ रुपये का गिरना नहीं है। आने वाले दिनों की तस्वीर और भयावह लग रही है। क्योंकि घरेलू मोर्चे पर उद्योग व्यापार और यहां तक कि सेवा क्षेत्र भी औंधे मुंह गिरे हुए हैं. . .हालात यह है कि अब केबिनेट मंत्री ही अब उद्योगों के लिए राहत पैकेज मांगने लगे हैं। हाल ही में प्रफुल्ल पटेल का बयान आया – यदि ऑटो उद्योग को सहायता नहीं दी गई तो यह खत्म हो जाएगा। चुनाव सिर पर है, इसलिए सरकार मजबूर है कि वह कोई ऐसा कदम न उठाए जिससे वोट बैंक पर सीधा असर पड़े. . .

■ विक्रम उपाध्याय

देश की अर्थव्यवस्था पूरी तरह पटरी से उतर चुकी है। उद्योग, व्यापार और सेवा क्षेत्र में छाई मंदी से खतरनाक सरकार की बेचारगी है। प्रधानमंत्री से लेकर वित्त मंत्री तक इस समस्या का समाधान ढूढ़ने के बजाय कभी अमरीका तो कभी सीरिया की

तरफ देख रहे हैं। इस विकट परिस्थिति से लड़ने के लिए सरकार के पास न तो इच्छा शक्ति बची है और न उसे राजनीतिक सहयोग प्राप्त है।

उदारीकरण के जनक कहे जाने वाले प्रधानमंत्री संसद में विपक्ष के सामने बुझे–बुझे नजर आए। अर्थशास्त्र के नजरिए से वे एक विफल सेनापति की तरह खड़े थे। उनकी बातों से स्पष्ट था कि वे खुद कांग्रेस नेतृत्व की वोट नीति के शिकार हैं। उन्होंने लोक सभा में कहा – ''पीछे हमने आसान उदारीकरण तो कर दिया अब कठिन उदारीकरण करना बाकी है। जैसे कि सब्सिडी में कटौती करना, बीमा और पेंशन क्षेत्र में सुधार करना, लाल फीताशाही खत्म करना और वस्तु तथा सेवा पर लागू सेवा करों को ठीक से लागू करना। ये सुधार पेड़ पर नीचे लटके फल नहीं हैं, इसके लिए मजबूत राजनीतिक मतैक्य होना चाहिए।'' इसी विरोधाभाष की भेंट चढ़ गई हमारी अर्थव्यवस्था।

दरअसल राजग के ''इंडिया साइनिंग'' प्रचार को धूल चटा सत्ता में जब कांग्रेस आई तो उसके सामने अपनी विश्वसनीयता को स्थापित करने के लिए कोई बड़ा हथकंडा चाहिए था। और वह हथकंडा नरेगा बाद में मनरेगा के रूप में हासिल हुआ जिसे सोनिया गांधी ने चुनाव के अपने नारे कांग्रेस का हाथ आम आदमी के साथ के रूप में सफलता पूर्वक स्थापित भी कर लिया, लेकिन साथ में अर्थव्यवस्था को भी चोट पहुंचाया। ग्रामीण भारत को रोजगार देने की इस योजना की आलोचना में एक बात हमेशा आती है कि इससे हमारा राजकोषीय घाटा अनियंत्रित हो गया।

कई प्रमख अर्थशास्त्रियों, यहां तक कि विश्व बैंक, ने भी इस योजना को वोट बैंक की राजनीति बताया और यहां तक कहा कि नरेगा पूरी तरह फेल है। वर्ष 2011 में वाल स्ट्रीट जर्नल कहता है– नरेगा एक फेल कार्यक्रम है। यहां तक कि राजस्थान में भी सालों खर्च करने और अकुशल ग्रामीणों को रोजगार देने बाद भी कोई बड़ी सड़क नहीं बनी, कोई मकान, स्कूल या अस्पताल नहीं बने और न हीं कोई बुनियादी काम हुआ।''

पर सरकार लगातार नरेगा पर खर्च कर रही है। लगभग 60 हजार करोड़ रुपये के बजटीय प्रावधान ने राजकोषीय घाटे पर जबर्दस्त दबाव डाला है। आज हमारा राकोषीय घाटा जीडीपी का लगभग 6 फीसदी है, जो खुद प्रधानमंत्री के लिए चिंता की बात है। बकौल यशवंत सिन्हा

''सरकार ने घाटा उपभोग में बढ़ाया निर्माण में नहीं और यही तबाही का मुख्य कारण है।''

भले ही नरेगा या मनरेगा से ग्रामीण भारत की आर्थिक स्थिति नहीं सुधरी, मजदूरों की खरीद क्षमता नहीं बढ़ने से अर्थव्यवस्था में उनका योगदान नहीं हुआ, पर कांग्रेस ने नरेगा का लाभ सीधे उठाया और वह इस योजना का डंका बजाकर 2009 के आम चुनाव में सत्ता पर दुबारा काबिज हो गई।

कांग्रेस के सामाजिक सरोकार और गरीबों के कुछ कर गुजरने की मंशा पर बिना सवाल उठाए यह कहा जा सकता है, सोनिया गांधी और उनके सिपहसलारों को यह लगा कि सत्ता में बने रहने के लिए जरूरी है कि थोड़े–थोड़े समय पर लोक लुभावन योजनाएं लाई जाएं ताकि सरकार की विफलता का ठीकरा पार्टी पर न टूटे। साथ ही गठबंधन की राजनीति को एक सुरक्षित पैसेज भी मिल जाए।

कांग्रेस को अपने इस मकसद में कामयाबी तो मिल गई पर पर दाँव पर देश की अर्थव्यवस्था चढ़ गई। अर्थशास्त्र के नियम बदल गए। नियोजित खर्चों में सरकार कटौती करने लगी और लोकलुभावन खर्चों का बजट बढ़ने लगा। 2008 में किसानों की कर्ज माफी पर 71 हजार करोड़, और अब खाद्य सुरक्षा कानून पर लगभग डेढ़ लाख करोड़ रुपये की सब्सिडी कांग्रेस के लिए वाहवाही का उद्यरण है तो अर्थव्यवस्था के लिए बर्बादी का उदाहरण भी है। जो लोग इस बात की दलील दे रहे हैं कि खाद्य सुरक्षा और लोन माफी योजना से देश की अर्थव्यवस्था पर कोई असर नहीं पड़ेगा, उनके लिए यह जानना जरूरी है कि राजकोषीय घाटे को काबू में रखने के लिए वर्ष 2012–13 में वित्त मंत्री ने नियोजित खर्चें में 92,000 करोड़ रुपये की कटौती की थी ताकि राजकोषीय घाटा जीडीपी के पांच फीसदी से उपर ना हो। सोनिया गांधी की योजना लागू करने के लिए चालू वर्ष में भी नियोजित खर्चे में कटौती की तैयारी चल रही है। योजना आयोग के उपाध्यक्ष मोटेंक सिंह आहलुवालिया कहते हैं–'' हालांकि नियोजित खर्चें में कमी के लिए सरकार के पास से अभी तक कोई औपचारिक प्रस्ताव नहीं आया है पर, पर आया तो हम उसमें पूरा सहयोग करेंगे।''

सिर्फ कांग्रेस नेतृत्व की महात्वाकांक्षाएं ही हमारी आर्थिक दुदर्शा के लिए जिम्मेदार नहीं है, बल्कि उससे कहीं अधिक गंभीर बात सरकार की आंतरिक खींचतान और मंत्रियों में सामूहिक जिम्मेदारी का घोर अभाव भी है। दो चार मंत्रियों या मंत्रालयों को छोड़ दे तो पूरी सरकर अलग–अलग दिशा में दौड़ते घोड़ों की टूटी फूटी गाड़ी लगती है। खुद मनमोहन सिंह प्रधानमंत्री के रुप में अपनी पहचान कभी भी सिद्ध नहीं कर पाएं। न तो सहयोगी पार्टियों ने कभी उन्हें तव्वजों दी न कांग्रेस के वरिष्ठ नेताओं ने सरकार की किरकिरी रोकने में प्रधानमंत्री का साथ दिया। बल्कि राजनीतिक हलकों में यह संदेश गया कि प्रधानमंत्री 7 रेस कोर्स के बाहर सिर्फ कांग्रेस अध्यक्ष के वफादार हैं।

यही कारण है कि बिगड़ते हालात की जिम्मेदारी कोई नहीं ले रहा। यहां तक कि देश में आर्थिक आपात के हालात के लिए वित्त मंत्री ने इशारों में ही सही महामहिम प्रणव मुखर्जी तक को जिम्मेदार ठहरा दिया। राज्य सभा में आर्थिक हालात पर वक्तव्य देते हुए पी चिदम्बरम ने कहा ''अर्थव्यवस्था की बदहाली के लिए केवल बाहरी कारक ही जिम्मेदार नहीं हैं, इसके घरेलू कारण भी हैं। हमने राकोषीय घाटे को बढ़ने दिया, चालू खाता घाटा भी काफी बढ़ गया, और ऐसा इसलिए हुआ कि वर्ष 2009 से 2011 के दौरान हमने कुछ गलत फैसले लिए।'' मालूम हो कि प्रणव मुखर्जी ने जनवरी 2009 में ही वित्त मंत्रालय संभाला था।

चिदंबरम ही क्यों? न तो कृषि मंत्री शरद पवार ने महंगाई के लिए कभी जिम्मेदारी ली और न वाणिज्यमंत्री आनंद शर्मा ने निर्यात गिरने में अपनी असफलता स्वीकार की। लगभग सभी आर्थिक मंत्रालयों के मंत्री समस्या बांटने के बजाय बढ़ा रहे हैं। जिम्मेदार मंत्री गैर जिम्मेदाराना बयान से प्रधानमंत्री को ही कठघरे में खड़ा कर दे रहे हैं। रुपये को लगातार गिरते देख घबराए वाणिज्य मंत्री ने आनन –फानन में यह बयान दे डाला कि भारत को 500 टन सोना गिरवी रखकर चालू खाते के घाटे को पाट देना चाहिए। इधर पेट्रोलियम मंत्री ने यह कहकर सिरदर्दी बढ़ा दी कि खपत कम करने के लिए रात को पेट्रोल पंप ही बंद कर दिया जाए। प्रधानमंत्री हालांकि सफाई तो दे चुके हैं लेकिन इस अवधारणा को नहीं मिटा पाए कि सरकार समस्या का समाधान खोजने के बजाए खुद ही दहशत में आ गई है।

अर्थव्यवस्था के साथ साथ सरकार की विश्वसनीयता पर भी जबर्दस्त संकट है। लगातार घोटालो और घपलों ने अंतराष्ट्रीय मंच पर भारत की साख कम कर दी है, और निवेशकों के मन में यह आशंका भर दी है कि उनका निवेश यहां सुरक्षित नहीं है। यही कारण है कि पी चिदंबरम द्वारा संस्थागत विदेशी निवेशकों को समझाने बुझाने के बाद भी देश के बाहर तेजी से पूंजी जा रही है। जून, जुलाई और अगस्त के महीने में विदेशी निवेशकों ने दबाकर पैसा निकाला। पिछले दो महीनों में ही लगभग साढ़े पांच अरब डॉलर की बिकवाली हो गई। अपने खजाने को खाली कर रुपये को संभालने की कवायद में सरकार और उलझ कर रह गई। सरकार को हताशा में देखकर सटोरियों ने भी बहती गंगा में हाथ धोया और डॉलर के मुकाबले रुपये को 70 तक ले गए। एक स्थिर व तेजी से बढ़ती

अर्थव्यवस्था के रूप में भारत की जो पहचान बन रही थी, उस पर बट्टा लग गया।

दुनिया की तमाम रेटिंग एजेंसियों ने अलार्म बजाना शुरू कर दिया बौर भारत के लिए नकारात्मक रेटिंग शुरू कर दी। स्टैंडर्ड एंड पुअर ने कहा – पूंजी का तेजी से बाहर जाना और रुपये की कीमत में लगातार कमी होना साफ दर्शाता है कि विदेशी निवेशक भारत के प्रति अपना विश्वास खोते जा रहे हैं। हम आगे भी नकारात्मक स्थिति ही देख रहे हैं। '' इस एजेसी ने भारतीय अर्थव्यवस्था की रेटिंग इंडोनेशिया से भी कम की है। एक और अंतरराष्ट्रीय रेटिंग एजेंसी फिच ने भी भारत को संतुलित अर्थव्यवस्था से जोखिम वाली अर्थव्यवस्था का तमगा थमा दिया है। हालांकि सरकार और उद्योग की तरफ से इन रेटिंग एजेंसियों के दावे को खारिज कर दिया गया है, पर परिणामों में हम उनकी रेटिंग को सही ठहरा रहे हैं। भारत में विदेशी पूंजी का प्रवाह लगभग रुक गया है। दि वर्ल्ड इनवेस्टमेंट रिपोर्ट 2013 के अनुसार हमारे यहां विदेशी निवेश प्रवाह में 29 फीसदी की कमी आई है। वह भी तब जब हमने तमाम राजनीतिक विरोधों को किनारा कर मुक्त हस्त विदेशी निवेश की सीमा बढाई। चाहे वह खुदरा व्यापार के क्षेत्र में हो या फिर टेलीकॉम के क्षेत्र में।

भारत की समस्या सिर्फ रुपये का गिरना नहीं है। आने वाले दिनों की तस्वीर और भयावह लग रही है। क्योंकि घरेलू मोर्चे पर उद्योग व्यापार और यहां तक कि सेवा क्षेत्र भी औंधे मुंह गिरे हुए हैं। चुनाव सिर पर है, इसलिए सरकार मजबूर है कि वह कोई ऐसा कदम न उठाए जिससे वोट बैंक पर सीधा असर पड़े। फिलहाल सरकार के पास दो तीन बड़े बहाने हैं– एक अमरीका की अर्थव्यवस्था सुधर रही है, इसलिए वहां के बांड में निवेश बढ़ेगा और विदेशी निवेशक भारत छोड़कर एक स्थिर अर्थव्यवस्था में निवेश करेंगे। दूसरा यूरोपीय बाजार में भी मंदी छाई हुई है, इसलिए निर्यात पर बुरा असर पड़ रहा है और तीसरा सीरिया पर हमले की आशंका के कारण पेट्रोलियम पदार्थों की कीमत बढ़ेगी और उसका असर हम पर पड़ेगा, क्योंकि हम अपनी जरूरत के 80 फीसदी हिस्से का आयात करते हैं। हां अच्छे मानसून का हवाला देकर प्रधानमंत्री कुछ आशा जगाने की कोशिश कर रहे हैं। पर परिस्थितियां कुछ और कह रही हैं।

रोज बढ़ती महंगाई को काबू करने में विफल सरकार ने सारी जिम्मेदारी रिजर्व बैंक पर डाल दी है और रिजर्व बैंक के पास एक ही विकल्प है– बाजार में तरलता को रोकना। ताकि मांग गिरे और बाजार पर से दबाव कम हो। इस प्रयास रिजर्व बैंक लगातार कठोर मौद्रिक नीतियां अपनाता रहा। ब्याज दर बढ़ता गया। बैंकों से साख की सुविधा कम हो गई। इस समय बाजार में तरलता का घोर संकट है। चीजों के दाम पर थोड़े बहुत अंकुश तो लगे पर परिणाम बहुत ही घातक हुआ। निर्माण क्षेत्र पूरी तरह बैठ गया है। ऑटो, रियल एस्टेट और कंज्यूमर गुड़स उद्योग में ताले लगने शुरू हो गए।

हालत यह है कि अब केबिनेट मंत्री ही अब उद्योगों के लिए राहत पैकेज मांगने लगे हैं। हाल ही में प्रफुल्ल पटेल का बयान आया – यदि ऑटो उद्योग को सहायता नहीं दी गई तो यह खत्म हो जाएगा।

भारत की विकास दर पिछले एक दशक में सबसे कम है। ताजा आकड़े बताते हैं कि चालू वित्त वर्ष की पहली तिमाही में हमारी सकल घरेलू उत्पादन वृद्धि दर यानी जीडीपी 4.4 फीसदी रहने वाली है और विशेषज्ञ बता रहे हैं कि चालू संकट के चलते जीडीपी में और गिरावट आएगी। इस गिरती जीडीपी को रोकने के लिए सरकार को भारी पूंजी निवेश करना होग, सारे बंद मेगा परियोजनओं को चालू करना होगा, पर पहले से ही पंगु सरकार के पास पैसा कहां से आए यह बहुत बड़ा सवाल बना रहेगा। बैंकों की हालात ज्यादा खस्ता होने का भी दुष्परिणाम सामने आएगा। लगातार बढ़ते एनपीए से रिजर्व बैंक ही नहीं पूरी सरकार परेशान है और उनको बचाए रखने के लिए वित्त मंत्री ने 14 हजार करोड़ रुपये के पैकेज का ऐलान कर भी दिया है। यदि हालात नहीं सुधरे और रुपये में गिरावट जारी रहा सरकार को और घुटने टेकने पड़ सकते हैं– कमजोर रुपये के कारण महंगाई और बढ़ेगी, मुद्रा स्फीति की दर बेकाबू हो जाएगी और गैस, पेट्रोलियम पदार्थों समेत सभी सब्सिडी का बोझ और बढ़ जाएगा।

घरेलू या विदेशी निवेशकों को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए सरकारी बांड या जमा पर ब्याज दर बढ़ाना होगा। अपने को बचाने के लिए ब्राजील और इंडोनेशिया ने पहले ही यह काम कर दिया है। लेकिन बांड या जमा पर ब्याज दर बढ़ाने का फैसला आसान नहीं होगा, क्योंकि इससे कर्ज पर देय ब्याज दर भी बढ़ जाएगा और इसका सीधा असर उद्योग व व्यापार पर पड़ेगा, जो उची ब्याज दर के कारण अभी ही गिरे पड़े हैं। सरकार के पास अंतिम विकल्प है अपने खर्च कम करना और राजस्व वसूली तेज करना। यह विकल्प भी आज के समय और परिस्थितियों में ज्यादा कारगर नहीं है। चुनाव के वर्ष में लोकलुभावन योजनाओं में कोई कटौती करने का जोखिम कांग्रेस ले नहीं सकती और राजस्व वसूली का दायरा इस समय बढाना नामुमकिन है। ❑

रुपए को खा गया विदेशी निवेश

मूल समस्या मनमोहन सरकार की ऋण लेकर घी पीने की नीति की है। सरकार की नीति कोलकाता की शारधा चिट फंड से भिन्न नहीं है। शारधा के मालिक नये धारकों से रकम जमा कराते रहे और पुराने की रकम अदा करते रहे। कंपनी घाटे में चल रही थी परन्तु यह तब तक नहीं दिखा जब तक नई रकम आती रही। जब गुब्बारा फूटा तो सब नष्ट हो गया। इसी प्रकार जब तक विदेशी निवेश आता रहा तब तक घाटे में चल रही भारत सरकार जश्न मनाती रही। अब गुब्बारा फूट चुका है और रुपया लुढ़क रहा है।

■ डॉ. भरत झुनझुनवाला

रुपये में आयी गिरावट का मूल कारण हमारे नेताओं का विदेशी निवेश के प्रति मोह का है। विदेशी निवेश को आकर्षित करके देश को रकम मिलती रही। देश की सरकार इस रकम का उपयोग मनरेगा अथवा भोजन का अधिकार जैसी योजनाओं के लिये या फिर सरकारी कर्मियों को बढ़े वेतन देने के लिये अथवा भ्रष्टाचार के माध्यम से इसका रिसाव करती रही। वर्ष 2002 से 2011 तक यह व्यवस्था चलती रही।

मान लीजिये विदेशी निवेशकों ने 100 डालर भारत लाकर जमा किया। सरकार ने इस डालर से गेहूं का आयात किया और भोजन के अधिकार की पूर्ति के लिये इसे वितरित कर दिया। गेहूं खत्म हो गया लेकिन ऋण खड़ा रहा। विदेशी निवेश हमारे ऊपर एक प्रकार का ऋण होता है। अपनी रकम को विदेशी निवेशक कभी भी वापस ले जा सकते हैं। जिस प्रकार उद्यमी बैंक से ऋण लेता है उसी तरह देश विदेशी निवेशकों से ऋण लेता है। दस वर्षों तक विदेशी निवेश आता रहा और देश पर ऋण चढ़ता रहा। लेकिन कब तक? जैसे व्यक्ति शराब पीता ही जाये तो एक क्षण ऐसा आता है कि वह बेहोश हो जाता है। इसी प्रकार विदेशी निवेश के बढ़ते ऋण से रुपया बेहोश हो गया है।

प्रतीत होता है कि सरकार को इस परिस्थिति का पूर्वाभास हो गया था। इसीलिये पिछले एक वर्ष से विदेशी निवेश को आकर्षित करने के विषेष प्रयास किये गये हैं। विदेशी निवेश दो प्रकार का होता है – प्रत्यक्ष एवं संस्थागत।

विदेशी निवेशक कभी भी वापस ले जा सकते हैं। जिस प्रकार उद्यमी बैंक से ऋण लेता है उसी तरह देश विदेशी निवेशकों से ऋण लेता है। दस वर्षों तक विदेशी निवेश आता रहा और देश पर ऋण चढ़ता रहा। लेकिन कब तक? जैसे व्यक्ति शराब पीता ही जाये तो एक क्षण ऐसा आता है कि वह बेहोश हो जाता है। इसी प्रकार विदेशी निवेश के बढ़ते ऋण से रुपया बेहोश हो गया है।

प्रत्यक्ष विदेशी निवेश में निवेशक भारत में कारखाना लगाता है जैसे फोर्ड ने चेन्नई में कार बनाने का कारखाना लगाया। अथवा प्रत्यक्ष विदेशी निवेश में भारतीय कम्पनी को खरीदा जाता है। जैसे जापानी निवेशक ने रनबैक्सी को खरीद लिया। प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के आने में समय लगता है जैसे किसी शहर में रेलगाड़ी के आने में समय लगता है। इसके वापस जाने में भी समय लगता है चूंकि निवेशक को अपनी फैक्ट्री आदि बेचनी पड़ती है। दूसरे प्रकार का विदेशी निवेश संस्थागत कहा जाता है। इसमें किसी विदेशी संस्था द्वारा भारत में शेयर बाजार

में निवेश किया जाता है। यह रकम शीघ्र आवागमन कर सकती है चूंकि शेयर को खरीदना एवं बेचना एक क्लिक से हो जाता है।

सरकार चाहती है कि दोनों में से कोई भी विदेशी निवेश आये। शेयर बाजार में आने वाले संस्थागत निवेश का सरकार पर वश नहीं चलता है। लेकिन प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को आकर्षित करने के लिये पालिसी बनाई जा सकती है। सरकार ने सोचा कि देश को प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के लिये खोल देंगे तो निवेशक को भारत पर भरोसा बनेगा। वे सोचेंगे कि विदेशी कम्पनियों के आगमन से भारत की अर्थव्यवस्था कुशल हो जाएगी। अर्थव्यवस्था को इस कुशलता के चलते संस्थागत निवेश भी आता रहेगा। इस योजना को लागू करने के लिये गये बीते समय में सरकार ने रक्षा, टेलीकॉम तथा बीमा के क्षेत्र में विदेशी निवेश की सीमा में वृद्धि की है।

पहले रक्षा क्षेत्र में 25 प्रतिशत से अधिक मलकियत विदेशी कम्पनी द्वारा हासिल नहीं की जा सकती थी। अब इससे अधिक की स्वीकृति दी जा सकती है। टेलीकॉम क्षेत्र में पूर्व में 74 प्रतिशत विदेशी निवेश किया जा सकता था। अब 100 प्रतिशत किया जा सकेगा। बीमा क्षेत्र में सीमा 25 प्रतिशत से बढ़ाकर 49 प्रतिशत कर दी गयी है।

सोच थी कि इन सीमाओं को बढ़ाने से विदेशी निवेशकों की रुचि बढ़ेगी, अधिक मात्रा में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश आएगा, पीछे–पीछे संस्थागत विदेशी निवेश भी आयेगा और भारत की अर्थव्यवस्था चल निकलेगी।

इन सुधारों के कारण अधिक मात्रा में विदेशी निवेश आयेगा और यह वर्तमान संकट से हमें तारने का काम करेगा इसमें मुझे संशय था। पहला कारण कि नई फक्ट्रियों को लगाने के लिये विदेशी निवेश आने में समय लगता है। मान लीजिये कोई टेलीकाम कम्पनी भारत में धंधा करना चाहती है। पहले सर्वे किया जाएगा, रिपोर्ट बनेगी, बैंकों से अनुबन्ध होगा, सरकार से लाइसेंस लिया जाएगा, इसके बाद 2–3 साल में रकम धीरे–धीरे भारत आयेगी। अतः इस सुधार से वर्तमान संकट में राहत मिलने की संभावना कम ही है। दूसरा कारण कि लाभांश प्रेषण का भार बढ़ रहा था। भारत में पूर्व में किये गये विदेशी निवेश पर विदेशी कम्पनियां लाभ कमाती हैं। समय क्रम में वे इस लाभ को अधिकाधिक मात्रा में अपने मुख्यालय भेजना शुरू कर देती हैं। 2010 में 4 अरब डालर, 2011 में 8 अरब डालर और 2012 में 12 अरब डालर लाभांश वापसी के रूप में बाहर भेजे गये। तब हमारी अर्थव्यवस्था ज्यादा दबाव में आती है। आयातों के साथ–साथ हमें लाभांश प्रेषण के लिये भी डालर कमाने पड़ते हैं। आने वाले समय में यह रकम तेजी से बढ़ेगी। विदेशी निवेश खोलने से हमे कुछ रकम मिले तो भी बढ़ते लाभांश प्रेषण से यह कट जाएगी। रिटेल और उट्टयन में विदेशी निवेश पूर्व में खोला जा चुका था। परन्तु आवक शून्य रही। टेलीकाम आदि क्षेत्रों मे भी यही परिणाम रहा।

भारत में पूर्व में किये गये विदेशी निवेश पर विदेशी कम्पनियां लाभ कमाती हैं। समय क्रम में वे इस लाभ को अधिकाधिक मात्रा में अपने मुख्यालय भेजना शुरू कर देती हैं। 2010 में 4 अरब डालर, 2011 में 8 अरब डालर और 2012 में 12 अरब डालर लाभांश वापसी के रूप में बाहर भेजे गये।

इस प्रकार नये प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को लगातार आकर्षित करने की मनमोहन सिंह की पालिसी फेल हो गयी। लेकिन पूर्व में आये विदेशी निवेश का भार यथावत रहा। विदेशी निवेशकों को दिखने लगा कि भारत सरकार ने ऋण लेकर घी पीओ की नीति को अपना रखा है। पिछले माह वह बिन्दु आया कि विदेशी निवेशकों ने अपना पैसा वापस ले जाना शुरू कर दिया और रुपया बेहोश होकर तेजी से टूटने लगा।

मूल समस्या मनमोहन सरकार की ऋण लेकर घी पीने की नीति की है। सरकार की नीति कोलकाता की शारधा चिट फंड से भिन्न नहीं है। शारधा के मालिक नये धारकों से रकम जमा कराते रहे और पुराने की रकम अदा करते रहे। कंपनी घाटे में चल रही थी परन्तु यह तब तक नहीं दिखा जब तक नई रकम आती रही। जब गुब्बारा फूटा तो सब नष्ट हो गया। इसी प्रकार जब तक विदेशी निवेश आता रहा तब तक घाटे में चल रही भारत सरकार जश्न मनाती रही। अब गुब्बारा फूट चुका है और रुपया लुढ़क रहा है। मेरा अनुमान है कि रुपया 70 रुपये प्रति डालर के नजदीक स्थिर हो जायेगा। लेकिन इससे अल्पकालिक राहत मिलेगी। देश की अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करने के लिये सरकार को खपत कम और निवेश अधिक करने होंगे। विदेशी निवेश से आयी रकम का सदुपयोग हाइवे तथा इन्टरनेट सुविधाओं के लिये किया जाएगा तब ही सही मायने में रुपया स्थिर होगा। ❑

डॉलर के मुकाबले रुपए में कमजोरी : आर्थिक निर्णयों में राजनीति प्रमुख कारण

भारत में रुपये ने जिस तेजी से गोता लगाया है उससे विदेशों में भारतीय आर्थिक नीति निर्धारकों के प्रति भरोसा कम हुआ है। यह भी संदेश गया है कि खाद्य सुरक्षा बिल का अतिरिक्त भार भारत की अर्थव्यवस्था पर सवा लाख करोड़ रुपये का विपरीत प्रभाव डालेगा। इसका अनुमान बिल पर चर्चा के दौरान ही लग गया था। अभी सरकारी खजाना इस भारी बोझ को सहन करने की स्थिति में नहीं हैं। परन्तु कांग्रेस ने इस बिल को राजनैतिक दृष्टिकोण से देखते हुए वर्ष 2014 के आम चुनावों को ध्यान में रखा।

■ डॉ. सूर्य प्रकाश अग्रवाल

दिनांक 28 अगस्त 2013 को डॉलर मूल्य 68.81 रुपये था जबकि 27 अगस्त 2013 को 66.75 रुपये था। 22 अगस्त 2013 को 65.56 रुपये था। डॉलर के मुकाबले रुपये में आ रही गिरावट से देश की अर्थव्यवस्था के प्रति ही लोगों का विश्वास डगमगाने लगा हैं। रुपये में यह गिरावट खाद्य सुरक्षा विधेयक के लोकसभा में पास होने के तुरंत बाद ही देखा गया। शेयर बाजार भी 27 अगस्त को गिर कर 17,922 अंक पर बंद हुआ। इसे देख कर यह लगा कि देश के वित्तीय बजार को सरकार के द्वारा आर्थिक दशा को सुधारने के लिए उठाये गये कदमों पर ही विश्वास नहीं हो रहा है।

यह कहा जा रहा है कि इस गिरावट का श्रेय खाद्य सुरक्षा विधेयक के पास होने को है जिसके कारण सरकार पर 1.30 लाख करोड़ रुपये का अतिरिक्त बोझ और पड जायेगा। चालू वित्तीय वर्ष में राजकोषीय घाटा को 4.8 प्रतिशत तक रखने में सरकार को परेशानी उठानी पड रही है। इसके अलावा कच्चे तेल की कीमतें भी 111 डॉलर प्रति बैरल को पार कर गई जिसका भी भारतीय राजकोषीय घाटे पर विपरीत प्रभाव पडेगा।

ऐसा लग रहा है कि रुपये का मूल्य अब सरकार व रिजर्व बैंक के नियंत्रण में नहीं रह गया है तथा जैसे ही सरकार के द्वारा सुधारात्मक उपाय किये जाते है वैसे ही अर्थव्यवस्था में और परेशानी हो जाती है। एक साल में रुपये के मूल्य में 16 प्रतिशत तक अवमूल्यन हुआ है।

डॉलर के मुकाबले रुपये के मूल्य के गिरने के कारण :–

(1) अमेरिकी अर्थव्यवस्था में सुधार से निवेशकों के बाहर जाने की आंशका हो गई है। (2) सरकारी घोषणाओं का बड़े विदेशी निवेशकों पर कोई प्रभाव नहीं हो रहा है। (3) कच्चा तेल महंगा हुआ तो भारतीय तेल कम्पनियों ने डॉलर की मांग भी बढ़ा दी हैं। (4) रिजर्व बैंक अब बाजार में अधिक डॉलर झौंकने की स्थिति में नहीं है। साथ ही विदेशी मुद्रा भंडार में गिरावट आयी है। (5) रेटिंग एजेन्सियां भारत में निवेश की रेटिंग घटने की उम्मीद जता रही है। (6) ब्राजील, रुस, इंडोनेशिया, दक्षिण अफ्रीका इत्यादि देशों की मुद्राओं की हालत भी खराब हो गई है। बस चीन की स्थिति बेहतर है। (7) रिजर्व बैंक व सरकार के पूंजी के प्रवाह पर अस्थायी प्रतिबंध से विदेशों से निवेश करने वाली भारतीय कम्पनियां हतोत्साहित हुई बल्कि भारत से पैसा विदेशों को तेजी से वापस जाने लगा। (8) अमेरिका के फेडरल बैंक के द्वारा वित्तीय प्रोत्साहन पैकेज को हटा या कम करने का रुख प्रगट किया गया है जिससे भारत में आने वाले फंड पर प्रभावपूर्ण प्रतिबंध अथवा रुकावट लग सकती है। (9) वर्ष 2012–13 में सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) एक दशक में गिरकर पांच प्रतिशत तक पहुंच गया है जिससे विदेशी निवेशकों का भारत के प्रति भरोसा टूट गया है। (10) सट्टेबाजी से रुपये में दबाब देखा गया है।

भारत में रुपये ने जिस तेजी से गोता लगाया है उससे विदेशों में भारतीय आर्थिक नीति निर्धारकों के प्रति भरोसा कम हुआ है। यह भी संदेश गया है कि खाद्य सुरक्षा बिल का अतिरिक्त भार भारत की अर्थव्यवस्था पर सवा लाख करोड़ रुपये का विपरीत प्रभाव डालेगा। इसका अनुमान बिल पर चर्चा के दौरान ही लग गया था। अभी सरकारी खजाना इस भारी बोझ को सहन करने की स्थिति में नहीं हैं। परन्तु कांग्रेस ने इस बिल को राजनैतिक दृष्टिकोण से देखते हुए वर्ष 2014 के आम चुनावों को ध्यान में रखा। गत कुछ समय से आर्थिक निर्णयों को राजनैतिक दृष्टिकोण रखते हुए पूरा किया जा रहा है। चालू खाते में बढ़ते घाटे को नियंत्रित करने की तनिक भी परवाह नहीं की गई है। कोई भी सरकार अर्थव्यवस्था को खतरे में डाल कर जनकल्याणकारी नीतियों को आगे नहीं बढाती है। परन्तु भारत सरकार ने ऐसा किया।

केन्द्र सरकार ने यह मान लिया कि निर्धन व वंचित तबकों को अधिक से अधिक सुविधाएं मुफ्त अथवा रियायती दरों पर उपलब्ध कराकर प्रत्येक तरह की समस्या का समाधान किया जा सकता है जो कि आत्मघाती नीति है। विशेष कर उस समय जब अर्थव्यवस्था पर चौतरफा दबाब हो। यह अल्पज्ञान वाला व्यक्ति भी समझता है कि समृद्धि मुफ्त की योजनाओं को आगे बढ़ाने से नहीं अपितु

लोगों को आर्थिक रुप से सक्षम बनाने से ही आती है। केन्द्र सरकार ने लोगों को अतिरिक्त रोजगार देने व क्रय शक्ति बढ़ाने के उपाय न करके ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी जिसमें लोगों की नौकरियों पर खतरा मंडरा रहा है व रोजगार के नये अवसर कम हो रहे है।

केन्द्र सरकार वर्ष 2014 में वोट प्राप्त करने के लिए ही ऐसा कर रही है। वह आम जनता की भलाई न करके उसको खतरे में डालने का काम कर रही है तथा आने वाला समय देश के प्रत्येक व्यक्ति के लिए मुश्किलों से भरा हुआ होगा। प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह यह जरुर कहते हैं कि वर्ष 1991 के आर्थिक हालात पैदा नहीं होने दिये जाएगें। परन्तु कांग्रेस व केन्द्रीय सरकार का प्रत्येक कदम वर्ष 2014 को ध्यान में रख कर उठाया जा रहा है जिसके गम्भीर आर्थिक दुष्परिणाम प्रत्येक भारतीय व्यक्ति को उठाने पडेगें।

रुपये का मूल्य उठ सकता है:

रुपये को डॉलर के मुकाबले मजबूत करने के लिए भारत ईरान की ओर देख रहा है। भारत ईरान से कच्चा तेल अधिक आयात करके आयात बिल में 10 अरब डॉलर की कमी करने की योजना बना रहा है। प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने पैट्रोलियम मंत्रालय को निर्देश दिये है कि वह किसी भी तरह आयात बिल इस वर्ष 25 अरब डॉलर कमी करें। ईरान से आयातित तेल का भुगतान भारत रुपये व वस्तुओं में कर सकेगा जिससे डॉलर के बाह्य गमन पर रुकावट हो सकेगी और रुपये का डॉलर के मुकाबले मूल्य बढ सकेगा।

पेट्रोलियम मंत्री वीरप्पा मोइली ने कहा है कि चालू खाते के घाटे (विदेशी मुद्रा के आने व देश से बाहर जाने का अंतर) की एक बडी वजह तेल आयात पर बढता खर्च है तथा पैट्रोलियम मंत्रालय ने प्रधानमंत्री के निर्देश पर अब तक 22 अरब डॉलर की कमी की योजना बना भी ली है। भारत एक बार फिर से ईरानी कच्चे तेल का सबसे बडा आयातक बनने जा रहा है। अमेरिका ने भारत को व्यापार के इस मामले में कुछ छूट भी दी है। अंतरराष्ट्रीय प्रतिबंधों की वजह से ईरान भी भारत को ज्यादा से ज्यादा कच्चा तेल कम कीमत पर देने को तैयार है। ईरान से समझौते से रुपये की कीमत कितनी ऊपर उठ सकेगी यह तो आने वाला समय ही बतायेगा।

गिरता रुपया और जनता का विश्वास

भारत केवल अपनी मुद्रा रुपया का मूल्य ही नहीं खो रहा है अपितु अपनी सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के प्रति अपनी विश्वसनीयता भी खो रहा है। तेजी से गिरता रुपया देश के विदेशी भंडार में भारी कमी कर देगा। रिजर्व बैंक रुपये को बचाने के लिए बाजार में डॉलर झौंक रहा है व दूसरी तरफ भारत के आयात बिल भी बढ़ गये है। एक रुपये के अवमूल्यन से भारत की तेल कम्पनियों पर 6,000 करोड रुपये का भार बढ़ जाता है।

सरकार की पिछली योजनाओं पर विदेशी निवेशकों ने बहुत ठण्डी प्रतिक्रिया दी तथा न तो खुदरा क्षेत्र से कोई बड़ा निवेश आया और न ही कोई बड़ा विलय या अधिग्रहण का प्रस्ताव ही आया। देश की अर्थव्यवस्था के प्रति बाहर के निवेशकों में उदसीनता बढ़ी है। मनरेगा, किसानों की ऋण माफी योजना, खाद्य सुरक्षा बिल, खुदरा में विदेशी पूंजी को आमंत्रण इत्यादि से एक प्रकार से देश की 65 प्रतिशत जनता के साथ केन्द्र सरकार धोखेबाजी ही कर रही है।

गिरते रुपये का प्रभाव व देशभक्त देशवासियों के द्वारा किये जाने वाले उपाय

कार, गैस, कैरोसिन, पैट्रोल, डीजल की कीमतें लगातार बढ़ रही है। आयातित कच्चे माल पर आाधारित उद्योग बंद करने होंगे। उद्योगों को ऋण के ब्याज की दरों में कटौती नही होने की सम्भावना है। राजस्व घाटा बढ़ता जा रहा है। मुद्रा के वायदा बाजार और फ्यूचर ट्रेडिंग पर कड़ी नजर रख कर नियंत्रण लगाना चाहिए। निर्यातक व अन्य व्यक्ति भी विदेशों में जमा अपने डॉलर भारत में लेकर आयें। देश की जनता को भी पैट्रोल व डीजल की खपत वाले यंत्रों व वाहनों का कम से कम प्रयोग करना चाहिए। किशोरों को बाइक चलाने की छूट नहीं देनी चाहिए। हनीमून व पर्यटन के लिए विदेशी मुद्रा के उपयोग पर प्रतिबंध लगाना चाहिए। दिखावटी व अनुपयोगी जरुरतों पर विदेशी मुद्रा व्यय करने पर भी रोक लगानी चाहिए।

वैश्विक अर्थव्यवस्था में भारत के जोखिम लेने की क्षमता तथा तरलता में आई कमी ने भारतीय रुपये को कमजोर करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। डॉलर की मांग व आपूर्ति बिगड़ने की वजह से रुपया कमजोर हेा गया। भारत को अपने निर्यात में तेजी लानी चाहिए। रिजर्व बैंक के पास भी रुपये में तेजी लाने के लिए सीमित विकल्प ही रहते है जिस पर निर्यात में बढ़ोत्तरी व विनिर्माण गतिविधियों में तेजी ही रुपये को मजबूती दे सकती है। भारत की अर्थव्यवस्था मजबूत है तथा उसे और मजबूत करने की आवश्यकता है।

देश की अर्थव्यवस्था व राजनीति

राजनीतिक दलों को भी सत्ता प्राप्ती के लिए आर्थिक निर्णयों का सहारा नहीं लेना चाहिए आर्थिक गतिविधियों में राजनीति देश को किसी न किसी दिन तबाह ही कर देगी। भारत की सर्वोच्च अदालत ने भी अपने एक फैसले में कहा है कि राजनैतिक दलों को अपने घोषणा पत्रों में मुफ्त लैपटॉप, टी वी, मिक्सर ग्राइंडर, बिजली का पंखा इत्यादि देने जैसी लोकलुभावन घोषणाएं भले ही जनप्रतिनिधित्व कानून में भ्रष्टाचार की परिभाषा में न आती हो लेकिन इनसे लोग प्रभावित जरुर होते हैं। यह चुनाव प्रक्रिया को दूषित करती है और देश की अर्थव्यवस्था पर इसका अतिरिक्त भार पड़ता है। ❑

श्रमिक शक्ति से रुपए को बनाए मजबूत

दुनिया का इतिहास बताता है कि यदि सरकार समझदारी से काम लें तो रुपए की कमजोरी भारत की ताकत भी साबित हो सकता है । उदाहरण के लिए जापान ने 1960 में कमजोर येन की ताकत चमकाई और 1970 के दशक में अपने निर्यात में चार गुना वृद्धि कर दुनिया के बाजार में अपना सिक्का जमाया । चीन ने भी 1980 के मध्य कमजोर युवान का दाव चला और एक दशक में ही दुनियां के बाजार को अपने माल से भर दिया। किन्तु भारत सरकार गत दशकों से आयात आधारित नीति बनाकर बैठी है जिससे जहां भारत का उद्योगिक उत्पादन लगभग ठप पड़ा है वही नौजवानों के सामने रोजगार का संकट खड़ा है।

■ पवन कुमार*

भारत सरकार इस समय पूरी तरह बदहवास नज़र आ रही है, न तो वह महंगाई रोक पा रही है, न ही बेरोजगारों को रोजगार दे पा रही है, उद्योगिक उत्पादन लगभग ठप हो गया है पेट्रोल डीजल के दाम रूक नहीं रहे हैं और रूपया सरकार के काबू से बाहर हो गया लगता है। इसी घबराहट में सरकार के वाणिज्य मंत्री सोना गिरबी रखने की सलाह दे रहे हैं और पेट्रोलियम मंत्री अजीबो–गरीब बातें करते है। जब जनता इन सुझावों का विरोध करती है तो मंत्री कहते हैं कि ये सलाह भी हमें जनता ने ही भेजी थी। आर्थिक क्षेत्र के जानकार कह रहे हैं कि देष 1991 के पूर्व की स्थिति में पहुंच गया है। जबकि प्रधानमंत्री देष को भरोसा दे रहे हैं कि देष के हालात 1991 की स्थिति से बेहतर हैं और काबू में हैं पता नहीं देष के अर्थषास्त्री प्रधानमंत्री व वित्त मंत्री रूपये को बचाने के लिए कब अपना चमत्कार दिखलायेंगे।

दुनिया का इतिहास बताता है कि यदि सरकार समझदारी से काम लें तो रुपए की कमजोरी भारत की ताकत भी साबित हो सकता है । उदाहरण के लिए जापान ने 1960 में कमजोर येन की ताकत चमकाई और 1970 के दषक में अपने निर्यात में चार गुना वृद्धि कर दुनिया के बाजार में अपना सिक्का जमाया । चीन ने भी 1980 के मध्य कमजोर युवान का दाव चला और एक दषक में ही दुनियां के बाजार को अपने माल से भर दिया। आज सारी दुनिया का बाजार चीन के उत्पादन से भरा पड़ा है। यानि चीन ने कमजोर युवान को अपनी ताकत बनाते हुए जहां उत्पादन बढ़ाया वहीं चीन में लगातार रोजगार के अवसर भी बढ़े।

किन्तु भारत सरकार गत दषकों से आयात आधारित नीति बनाकर बैठी है जिससे जहां भारत का उद्योगिक उत्पादन लगभग ठप पड़ा है वही नौजवानों के सामने रोजगार का संकट खड़ा है। अभी तक सरकार दावा करती थी कि हमारा जीडीपी बढ़ रहा है गत वर्षों में जहां जीडीपी 8 प्रतिषत के लगभग था वही अब ग्रोथ का तिसलिम भी टूट गया है और इस वर्ष की प्रथम तीमाही में जीडीपी दर 4.4 प्रतिषत रह गया। इस समय यदि सरकार गंभीरतापूर्वक विचार करे तो पाएगी कि इस दर्दनाक आर्थिक दुष्चक्र के बीच भी एक रोषनी की पतली रेखा दिखाई दे रही है। क्योंकि रुपए की कमजोरी ने भारत में एक बड़े बदलाव की शुरूआत कर दी है। भारत अब निर्यात आधारित ग्रोथ अपनाने पर मजदूर हो गया है। भारत का कोई भी अर्थषास्त्री निर्यात बढ़ाने के लिए शायद ही रूपये के अवमूल्यन का सुझाव देता जो बाजार ने अपने आप कर दिया। गत जुलाई मास में जहां आयात 6 प्रतिषत गिरने के संकेत हैं वही निर्यात 11 प्रतिषत बढ़ा है। इस वर्ष की प्रथम तिमाही में इलैक्ट्रीकल एवं इलैक्ट्रोनिक सामान के निर्यात में भी 2 प्रतिषत की बढ़ोतरी हुई है । यदि इस संकेत को समझकर सरकार रूपये को थामने की बजाय अपनी बदहवासी छोड़कर अपने उत्पादन नीति पर पुनर्विचार करे और इसे निर्यात आधारित बनाकर जहां रोजगार के अवसर बढ़ा सकती है वही विष्व बाजार की प्रतिस्पर्धा में अपना माल सस्ता होने के कारण दुनिया के बाजार में छा जाने का एक अपूर्व मौके का भरपूर इस्तेमाल कर सकती है ।

निर्यात की दुनिया में घरेलू मुद्रा की कमजोरी सबसे बड़ी ताकत होती है। बाजार में हमारा माल सस्ता है निर्यात में बढ़त का पैमाना केवल डॉलर ही नहीं होता। यह इस पर भी निर्भर करता है कि प्रतिस्पर्धी देषों में किसकी मुद्रा कितनी कमजोर है। गत 6 सालों में युवान के मुकावले रूपया 74 प्रतिषत टूटा है वही डॉलर के मुकाबले मात्र 38 प्रतिषत रूपया टूटा है। इस कारण आज कमजोर रूपये के साथ भारत अब चीन पर भी भारी है क्योंकि इस कारण आज बाजार में चीन के मुकाबले हमारा निर्यात सस्ता है। एंविट कैपिटल के अध्ययन के अनुसार 2007 के बाद से उत्पादन निर्यात में भारत की बढ़त चीन से ज्यादा है। इसलिए अब भारत को निर्यात बाजार में अपनी चमक दिखाने का मौका है। यदि सरकार इस समय पैतरा बदल कर कमजोर रूपये के सहारे दुनिया में छा जाने का अवसर है। यदि हम अपना निर्यात बढ़ाने में सफल होते हैं तो देष में डालर की आवक अपने आप बढ़ जायेगी जिससे हमारा विदेषी मुद्रा भंडार भी मजबूत होगा, रूपये पर दबाव घटेगा, निर्यात उत्पादन में नया निवेष होगा और रोजगार के अवसर भी बढ़ेंगे। ❑

*लेखक भारतीय मजदूर संघ के क्षेत्रीय संगठन मंत्री हैं।

मैं हूँ रुपया

वर्ष 1991 में जब महज 83.08 अरब डॉलर विदेशी कर्ज के कारण सोना गिरवी रखने की नौबत आ गई थी, तो आज 390 अरब डॉलर के विदेशी कर्ज के बोझ तले अर्थव्यवस्था की स्थिति कैसी होगी, इसका अंदाजा लगाया जा सकता है। वर्ष 2004 (112.06 अरब डॉलर) की तुलना में मार्च 2013 तक विदेशी कर्ज में तीन गुना से भी ज्यादा की बढ़ोतरी हो चुकी है। देश के कुल विदेशी कर्ज का 60 फीसदी हिस्सा डॉलर में लिया गया है, जिसे डॉलर में ही वापस करना है। एक डॉलर कर्ज की कीमत अगर कल तक देश के लिए 40 रुपए थी, तो आज उसी के लिए हमें 66 रुपए चुकाने होंगे।

■ उमाशंकर मिश्र

मेरा नाम रुपया है! मैं गिरता हूं तो डॉलर इतराने लगता है। आजादी के बाद बड़ा ही उतार–चढ़ाव भरा रहा है मेरा सफर। मेरे लुढ़कने के बारे में तो आप रोज सुनते हैं, लेकिन 66 सालों के मेरे सफर के बारे में जानना भी कम दिलचस्प नहीं है।

लोग मुझे रुपए के नाम से जानते हैं। जब मैं लुढकता हूं तो डॉलर खूब इतराता है। एक बार फिर शान से खड़ा है डॉलर। मैं पहले इतना बीमार कभी नहीं था। 1947 में जब भारत आजाद हुआ, उस वक्त मैं भी डॉलर के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलता था। उस दौर में मेरा यानी भारतीय रुपए का मूल्य अमेरिकी डॉलर के बराबर हुआ करता था। लेकिन आज डॉलर की हैसियत मेरे मुकाबले 67 गुना बढ़ गई है। इसका अर्थ यह हुआ कि मेरे मूल्य में पिछले 66 वर्षों में डॉलर की तुलना में 67 गुना गिरावट हुई है। स्वतंत्रता के बाद से मेरी कीमत लगातार घटती रही है। हाल के महीनों में तो पूरे एशिया में सबसेज्यादा अवमूल्यन मेरा (रुपए) का ही हुआ है। हालात यह हैं कि आज मैं दुनिया भर में सबसे ज्यादा अवमूल्यन दर्शाने वाली मुद्राओं की सूची में चौथे पायदान पर पहुंच गया हूं।

66 साल पहले आजादी के वक्त देश पर कोई विदेशी कर्ज नहीं था। 27 दिसम्बर 1947 को भारत के वर्ल्ड बैंक और अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष का सदस्य बनने के बाद यह सिलसिला टूटने जा रहा था। इन दोनों संस्थाओं में सदस्य देश सहयोग राशि जमा करते रहे और फिर जरूरत पड़ने पर कर्ज भी लेते रहे। भारत भी इस दौड़ में शामिल हो चुका था। 1947 से 1952 तक दोनों संस्थाओं में इसने अरबों डॉलर सहयोग राशि जमा की। 1952 में ही पंचवर्षीय योजना के कार्यान्वयन के लिए भारत को कर्जे की जरूरत पड़ी। अरबों रुपये अंशदान के रूप में डकार चुके इन दोनों संस्थाओं ने भारत को कर्ज देने के एवज में रुपए के अवमूल्यन करने की शर्त रखी। भारत ने अपने रुपए की कीमत, जो उस समय अमेरिका के डॉलर के बराबर हुआ करता था, उसे गिरा दिया। फिर लगभग सभी पंचवर्षीय योजनाओं के समय भारत ने

लोग मुझे रुपए के नाम से जानते हैं। जब मैं लुढकता हूं तो डॉलर खूब इतराता है। एक बार फिर शान से खड़ा है डॉलर। मैं पहले इतना बीमार कभी नहीं था। 1947 में जब भारत आजाद हुआ, उस वक्त मैं भी डॉलर के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलता था। उस दौर में मेरा यानी भारतीय रुपए का मूल्य अमेरिकी डॉलर के बराबर हुआ करता था। लेकिन आज डॉलर की हैसियत मेरे मुकाबले 67 गुना बढ़ गई है।

कर्ज लिया और शर्त स्वरूप रुपए की कीमत कम होती रही।

एक तरह से सरकार ने मेरे गिरने और उठने की कमान अमेरिका जैसे ताकतवर देशों के हाथों में सौंप दी। मेरी कीमत 1948 से 1966 के बीच 4.79 रुपए प्रति डॉलर हो गई। चीन के साथ 1962 में और पाकिस्तान के साथ 1965 में हुए युद्धों के भार से भारत का बजट घाटा बढ़ने आर्थिक संकट गहराने लगा। इससे बाध्य होकर सरकार ने मेरा (रुपए का) अवमूल्यन किया और डॉलर की कीमत 7.57 रुपए तय की गई। मेरा संबंध 1971 में ब्रिटिश मुद्रा से खत्म कर दिया गया और उसे सीधे तौर पर अमेरिकी मुद्रा से जोड़ दिया गया। भारतीय रुपए की कीमत 1975 में तीन मुद्राओं–अमेरिकी डॉलर, जापानी येन और जर्मन मार्क के साथ संयुक्त कर दी गई। उस समय एक डॉलर की कीमत 8.39 डॉलर थी।

1985 में फिर मेरी कीमत गिरकर 12 रुपए प्रति डॉलर हो गई। सिलसिला यहीं पर खत्म नहीं हुआ। भारत के सामने 1991 में भुगतान संतुलन का एक गंभीर संकट पैदा हो गया और वह अपनी मुद्रा में तीव्र गिरावट के लिए बाध्य हुआ। देश उस समय महंगाई, कम वृद्धि दर और विदेशी मुद्रा की कमी से जूझ रहा था। विदेशी मुद्रा तीन हफ्तों के आयात के लिए भी पर्याप्त नहीं थी। इन परिस्थितियों से उबरने के लिए सरकार ने एक बार फिर मेरा अवमूल्यन कर दिया गया। अब मेरी कीमत 17.90 रुपए प्रति डॉलर तय की गई।

यह वही दौर था जब वैश्वीकरण, उदारीकरण और निजीकरण जैसे जुमले दुनिया भर में अपना पैर पसार रहे थे। वास्तव में ये शब्द वर्ल्ड बैंक और अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष जैसी वैश्विक संस्थाओं के गढ़े हुए हैं। भारत भी इन जुमलों से अछूता न रह सका। सन् 1991 में उदारीकरण, वैश्वीकरण और निजीकरण की आवाज भारत की फिजाओं में गूंजने लगी। तत्कालीन वित्तमंत्री मनमोहन सिंह इसके अगुआ बने। वर्ल्ड बैंक और अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष की शर्तों के जाल में भारत उलझने लगा। बाद में आयात शुल्क खत्म कर दिया गया और हमारे स्टॉक एक्सचेंज के दरवाजे भी विदेशी निवेश के लिये खोल दिए गए। विदेशी निवेश की यहां बाढ़ सी आने लगी और हमारा स्टॉक मार्केट, घरेलू बाजार की तरह धीरे–धीरे विदेशियों के कब्जे में जाने लगा। चारों तरफ विदेशी शराब, विदेशी बैंक, विदेशी ठंडा और विदेशी मॉल नजर आने लगे। विडंबना यह है कि इसी को हम विकास मान रहे थे। जबकि भीतर से लगातार बिगड़ती मेरी हालत के बारे में किसी को ख्याल नहीं आया।

वर्ष 1993 स्वतंत्र भारत की मुद्रा के इतिहास में बहुत महत्वपूर्ण है। इस वर्ष मुझे यानी रुपए को बाजार के हिसाब से परिवर्तनीय घोषित कर दिया गया। मेरी कीमत अब मुद्रा बाजार के हिसाब से तय होनी थी। इसके बावजूद यह प्रावधान था कि मेरी कीमत अत्यधिक अस्थिर होने पर भारतीय रिजर्व बैंक दखल देगा। 1993 में डॉलर की कीमत 31.37 रुपए थी। 2001 से 2010 के दौरान डॉलर की कीमत 40 से 50 रुपए के बीच बनी रही। मेरा मूल्य सबसे ऊपर 2007 में रहा, जब डॉलर की कीमत 39 रुपए थी। 2008 की वैश्विक मंदी के समय से भारतीय रुपए की कीमत में गिरावट का दौर शुरू हुआ। पिछले कुछ समय से बढ़ती महंगाई, व्यापार और निवेश से जुड़े आंकड़ों के प्रभाव से मेरी स्थिति अत्यधिक कमजोर हो गई है। प्रधानमंत्री फिर शॉर्टकट ढूंढ रहे हैं, वित्तमंत्री हाथ–पांव मार रहे हैं, लेकिन मेरे मर्ज की दवा कहीं नजर नहीं आ रही।

कर्ज बना मर्ज! – वर्ष 1991 में जब महज 83.08 अरब डॉलर विदेशी कर्ज के कारण सोना गिरवी रखने की नौबत आ गई थी, तो आज 390 अरब डॉलर के विदेशी कर्ज के बोझ तले अर्थव्यवस्था की स्थिति कैसी होगी,

(शेष पृष्ठ 15 पर . . .)

1991 में उदारीकरण, वैश्वीकरण और निजीकरण की आवाज भारत की फिजाओं में गूंजने लगी। तत्कालीन वित्तमंत्री मनमोहन सिंह इसके अगुआ बने। वर्ल्ड बैंक और अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष की शर्तों के जाल में भारत उलझने लगा। बाद में आयात शुल्क खत्म कर दिया गया और हमारे स्टॉक एक्सचेंज के दरवाजे भी विदेशी निवेश के लिये खोल दिए गए। विदेशी निवेश की यहां बाढ़ सी आने लगी और हमारा स्टॉक मार्केट, घरेलू बाजार की तरह धीरे–धीरे विदेशियों के कब्जे में जाने लगा। चारों तरफ विदेशी शराब, विदेशी बैंक, विदेशी ठंडा और विदेशी मॉल नजर आने लगे। विडंबना यह है कि इसी को हम विकास मान रहे थे। जबकि भीतर से लगातार बिगड़ती मेरी (रुपया) हालत के बारे में किसी को ख्याल नहीं आया।

कैसे सुधरेगी अर्थव्यवस्था?

जाहिर है कि हमारा विकास विदेशी पूंजी और विदेशी तकनीक से नहीं होगा। अब यह बात सिद्ध हो चुकी है कि किसी भी देश का विकास उसके ही आंतरिक संसाधनों और शक्ति से संभव है। मनुष्य पहले उत्पादक है, फिर उपभोक्ता। यदि हम उत्पादन नहीं करेंगे और केवल उपभोक्ता रहेंगे तो एक दिन कंगाली की हालत में पहुंच जाएंगे। इसलिए कृषि विकास हमारी विकास योजनाओं का मुख्य आधार बनना चाहिए। इसकी बुनियाद पर ही गृह उद्योगों और ग्रामोद्योगों की एक रूपरेखा गांवों के विकास की बननी चाहिए।

■ निरंकार सिंह

देश का मौजूदा आर्थिक संकट इसलिए है कि हमारी कोई अर्थनीति नहीं है। हम विश्व बैंक, अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष और विश्व व्यापार संगठन की उन नीतियों पर चल रहे हैं जो कुछ पश्चिमी देशों खासतौर से अमेरिका के हित को ध्यान में रखकर बनाई गई हैं। यही कारण है कि अमेरिका मंदी से बाहर निकल रहा है और हम एक नए तरह के आर्थिक दुष्चक्र में फंसते जा रहे हैं।

हम आज तक अपनी जनता को पानी–बिजली जैसी बुनियादी सुविधाएं भी मुहैया नहीं करा पाए। महंगाई ने आम आदमी का जीना मुश्किल कर दिया है। एक तरफ आवश्यक वस्तुओं के दाम उसकी पहुंच से बाहर होते जा रहे हैं तो दूसरी तरफ उस पर करों का बोझ लगातार बढ़ा है। आज सरकार अपने नागरिकों से 65 प्रकार के टैक्स वसूल रही है, इतनी ज्यादा वसूली के बावजूद वह अपने नागरिकों को पानी की आवश्यक सप्लाई तक नहीं कर पा रही है। हमारे देश में पानी की तमाम सार्वजनिक टंकियां विश्व बैंक की सहायता से बनी हैं।

ऐसा लगता है कि सरकार चर्चिल की भविष्यवाणी को सिद्ध करना चाहती है। उसने कहा था कि भारत की आजादी का मतलब उसकी बर्बादी होगा। भारतीय नेता राज चलाने के लायक नहीं हैं, हवा को छोड़कर कोई चीज (डबल रोटी का एक टुकड़ा तक) नहीं बचेगा जिस पर कर नहीं होगा। बहरहाल, भारत अभी बर्बाद तो नहीं हुआ है लेकिन रुपया रसातल में पहुंच रहा है और सरकार घपले–घोटालों में फंसी है। देश में एक ओर अरबपतियों की संख्या बढ़ गई तो दूसरी तरफ गरीबों की संख्या बढ़ गई लेकिन इस तथ्य को छिपाने के लिए उसने गरीबी का पैमाना ही बदल दिया। इस आर्थिक विकास का उद्देश्य क्या है? इसका लक्ष्य यही है कि जितना है, उससे भी अधिक हमारे पास हो, हम और भी ऊंचा उठें. क्रांतिकारी वर्ग (समाजवादी साम्यवादी) की अपेक्षा है कि जो उपलब्ध है, वह और भी लोगों को उपलब्ध किया जाए अर्थात लाभों का वितरण हो. हमारी राजनीति, सारी शिक्षा, सारे विशेषाधिकार एक विशिष्ट वर्ग तक सीमित हैं।

यह आवश्यक नहीं कि ये सभी पूंजीपति ही हों मगर सबके सब विशेषाधिकार युक्त हैं और सार्वजनिक क्षेत्र जो औद्योगिक अर्थरचना का सबसे बड़ा हिस्सा हैं। कुछ थोड़े व्यक्तियों को छोड़कर, भारत का विशिष्ट वर्ग चाहता है कि तकनीक और भी अधिक आधुनिक हो, औद्योगीकरण बढ़े तथा कृषि का अधिकाधिक यंत्रीकरण एवं रासायनीकरण हो। आज भारत में आधुनिकता का मर्म यही है।

हम आज तक अपनी जनता को पानी–बिजली जैसी बुनियादी सुविधाएं भी मुहैया नहीं करा पाए। महंगाई ने आम आदमी का जीना मुश्किल कर दिया है। एक तरफ आवश्यक वस्तुओं के दाम उसकी पहुंच से बाहर होते जा रहे हैं तो दूसरी तरफ उस पर करों का बोझ लगातार बढ़ा है। आज सरकार अपने नागरिकों से 65 प्रकार के टैक्स वसूल रही है. . .

इसका नतीजा हमारे सामने है। समाज में विषमता बढ़ रही है। निम्न मध्य वर्ग का भी जीवन संकटों से घिरता जा रहा है।

देश की 60 फीसदी से अधिक आबादी तंगहाली और बदहाली में गुजर–बसर कर रही है। इसकी पुष्टि मानव विकास सूचकांक और यूनिसेफ की रिपोर्ट से भी होती है। कुल मिलाकर बेकारी भी बढ़ती जा रही है। शिक्षितों की बेकारी भी बढ़ी है। इसके बावजूद हमारे उच्चवर्गीय और सत्ताधारी लोग निरंतर आवश्यकताओं को बढ़ाने, अधिकाधिक प्राप्त करने और इस तरह उच्च से उच्चतर उठते जाने की 'विकास' और 'प्रगति' वाली पश्चिम की पुरानी कल्पनाओं पर मोहित हैं और यही वजह है कि समाजवादी नारों के बावजूद हमारी योजना तथा विकास के सारे कार्यक्रम अपनी राह बदलकर हमारी समस्याओं को उल्टे और अधिक पेचीदा बना रहे हैं।

जाहिर है कि हमारा विकास विदेशी पूंजी और विदेशी तकनीक से नहीं होगा। अब यह बात सिद्ध हो चुकी है कि किसी भी देश का विकास उसके ही आंतरिक संसाधनों और शक्ति से संभव है। मनुष्य पहले उत्पादक है, फिर उपभोक्ता। यदि हम उत्पादन नहीं करेंगे और केवल उपभोक्ता रहेंगे तो एक दिन कंगाली की हालत में पहुंच जाएंगे। इसलिए कृषि विकास हमारी विकास योजनाओं का मुख्य आधार बनना चाहिए। इसकी बुनियाद पर ही गृह उद्योगों और ग्रामोद्योगों की एक रूपरेखा गांवों के विकास की बननी चाहिए। उसमें बिजली, परिवहन और बाजार आदि की सुविधाएं भी उलपब्ध कराई जाएं। ❑

(पृष्ठ 13 का शेष. . .)

मैं हूँ रुपया . . .

इसका अंदाजा लगाया जा सकता है। वर्ष 2004 (112.06 अरब डॉलर) की तुलना में मार्च 2013 तक विदेशी कर्ज में तीन गुना से भी ज्यादा की बढ़ोतरी हो चुकी है। देश के कुल विदेशी कर्ज का 60 फीसदी हिस्सा डॉलर में लिया गया है, जिसे डॉलर में ही वापस करना है। एक डॉलर कर्ज की कीमत अगर कल तक देश के लिए 40 रुपए थी, तो आज उसी के लिए हमें 66 रुपए चुकाने होंगे।

वैश्विक शर्तों का जाल – 'युनाइटेड नेशन्स कान्फ्रेंस ऑन ट्रेड एंड डेव्लपमेंट' (अंकटाड) की 1995–96 की रिपोर्ट अनुसार 120 गरीब देशों में अमीर देशों का 500 बिलियन डॉलर (कर्जा, विदेशी पूंजी और विदेशी सहायता) के रूप में आया और गरीब देशों से अमीर देशों में 725 बिलियन डॉलर चला गया। इसी से स्पष्ट है कि पूंजी किधर से आती है और किधर जाती है। कुछ विद्वानों का मानना है कि भारत इस दुष्चक्र से तभी निकल सकता है जब वह इतना अधिक ताकतवर हो जाए कि वैश्विक संस्थाएं उस पर ऐसी शर्तें थोपने की हिम्मत न कर पाएं।

आम आदमी पर असर – उद्योग मंडल एसोचौम की रिपोर्ट के मुताबिक चढ़ते डॉलर ने मध्यवर्गीय परिवारों के बजट को 33 प्रतिशत बढ़ा दिया है। एक ओर कच्चे तेल के लिए दूसरे देशों पर निर्भरता हमारी मजबूरी है, दूसरी ओर सोने के प्रति ललक भारतीयों में कम नहीं हो रही। इनके लिए हमें ज्यादा डॉलर चुकाने होंगे। रुपए की कीमत कम होने का दुष्परिणाम यह हुआ की अगर हम 1952 में कोई निर्यात करते तो 100 रुपए के निर्यात पर हमें 100 डॉलर की विदेशी मुद्रा प्राप्त होती। अगर वही निर्यात हम आज करें तो करीब 1.7 डॉलर ही मिल पाएगा।

जब लुढका था चांदी का रुपया – रुपया शब्द सन् 1540–1545 के बीच शेरशाह सूरी के द्वारा जारी किए गए चांदी के सिक्कों के लिए उपयोग में लाया गया। उन्नीसवीं सदी मे जब दुनिया में सबसे सशक्त अर्थव्यवस्थाएं स्वर्ण मानक पर आधारित थीं, तब चांदी से बने रुपए के मूल्य मे भीषण गिरावट आयी। संयुक्त राज्य अमेरिका और विभिन्न यूरोपीय उपनिवेशों में विशाल मात्रा मे चांदी के स्रोत मिलने से चांदी का मूल्य सोने की अपेक्षा काफी गिर गया। अचानक भारत की मानक मुद्रा से अब बाहर की दुनिया से ज्यादा खरीद नहीं की जा सकती थी। इस घटना को 'रुपए की गिरावट' के रूप में जाना जाता है।

रुपए का प्रतीक चिह्न – भारतीय रुपए का नया प्रतीक चिह्न देवनागरी लिपि के 'र' और रोमन लिपि के अक्षर 'आर' को मिलाकर बना है, जिसमें एक क्षैतिज रेखा भी बनी हुई है। भारत सरकार ने 15 जुलाई, 2010 को इस चिह्न को स्वीकार कर लिया है। यह चिह्न भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (आईआईटी), मुम्बई के पोस्ट ग्रेजुएट डी. उदय कुमार ने बनाया है। इस चिह्न को वित्त मंत्रालय द्वारा आयोजित एक खुली प्रतियोगिता में प्राप्त हजारों डिजाइनों में से चुना गया था। फिलहाल रुपए के चिह्न को डिजीटल तकनीक तथा कम्प्यूटर प्रोग्राम में स्थापित करने की प्रक्रिया चल रही है। ❑

खाद्य सुरक्षा विधेयक

जमाखोरी और कालाबाजारी बढ़ाएगा खाद्य सुरक्षा विधेयक

खाद्य सुरक्षा विधेयक में पहले से ही विकसित जिस सार्वजनिक वितरण प्रणाली को आधार बनाया गया है, वह भ्रष्टाचार की भेंट चढ़कर पहले ही मृतप्राय हो चुकी है। इस पर जमाखोरों, कालाबाजारियों और बेईमान राशन डीलरों का कब्जा है। नियंत्रक और महालेखा परीक्षक (कैग) की जांच रिपोर्ट में यह पाया गया है कि 40 प्रतिशत जरूरतमंदों के राशन कार्ड नहीं बन पाते और 90 प्रतिशत खाद्य सामग्री नियमित रूप से नहीं मिल पाती।

■ महक सिंह

लोकसभा चुनाव को देखते हुए यूपीए सरकार ने मतदाताओं को लुभाने के लिए खाद्य सुरक्षा विधेयक को लोकसभा से पारित करवा लिया है। यह कानून बन जाने पर गरीबी रेखा से नीचे जीवन–यापन करने वाले को मासिक पांच किलो खाद्यान्न यानी तीन रुपये किलो चावल, दो रुपये किलो गेहूं और एक रुपया किलो मोटा अनाज मिलेगा। इससे खाद्यान्न खरीद की मात्रा मौजूदा 5.5 करोड़ टन से बढ़कर 6.2 करोड़ टन तक हो जाएगी और अनुमान है कि खाद्य सब्सिडी 85,000 करोड़ से बढ़कर 1,30,000 करोड़ रुपये तक पहुंच जाएगी।

घटती कृषि योग्य भूमि, किसान की जोत का घटता आकार, ग्लोबल वार्मिंग और वनों के अंधाधुंध कटान के कारण कम होती मानसून की वर्षा और बायो डीजल के लिए खाद्यान्न के बढ़ते उपयोग के कारण बढ़ती आबादी के लिए भविष्य में खाद्यान्न संकट पैदा होने की आशंका जताई जा रही है। ग्लोबल हंगर इंडेक्स, 2010 की रिपोर्ट के अनुसार, 122 विकासशील देशों में भारत का स्थान 67वां है। दुनिया के भूखे लोगों में से एक चौथाई भारत में हैं और 47 प्रतिशत बच्चे कुपोषण के शिकार हैं।

देश की 35 प्रतिशत जनसंख्या सार्वजनिक प्रणाली के अंतर्गत है। कानून बनने पर 67 फीसदी यानी 82 करोड़ जनसंख्या इसके दायरे में आ जाएगी और दोगुने से अधिक राशन काला बाजार की भेंट चढ़ जाएगा। इस विधेयक को लागू करने के लिए वर्तमान भंडारण क्षमता सात करोड़ टन से बढ़कर 11 करोड़ टन से अधिक करनी होगी।

खाद्य सुरक्षा विधेयक में पहले से ही विकसित जिस सार्वजनिक वितरण प्रणाली को आधार बनाया गया है, वह भ्रष्टाचार की भेंट चढ़कर पहले ही मृतप्राय हो चुकी है। इस पर जमाखोरों, कालाबाजारियों और बेईमान राशन डीलरों का कब्जा है। नियंत्रक और महालेखा परीक्षक (कैग) की जांच रिपोर्ट में यह पाया गया है कि 40 प्रतिशत जरूरतमंदों के राशन कार्ड नहीं बन पाते और 90 प्रतिशत खाद्य सामग्री नियमित रूप से नहीं मिल पाती।

इस समय देश की 35 प्रतिशत जनसंख्या सार्वजनिक प्रणाली के अंतर्गत है। कानून बनने पर 67 फीसदी यानी 82 करोड़ जनसंख्या इसके दायरे में आ जाएगी और दोगुने से अधिक राशन काला बाजार की भेंट चढ़ जाएगा। इस विधेयक को लागू करने के लिए वर्तमान भंडारण क्षमता सात करोड़ टन से बढ़कर 11 करोड़ टन से अधिक करनी होगी। यह भी तभी संभव है, जब खुले में अनाज न सड़े और भंडार गृहों में चूहे अपना पेट न भरें।

शरद पवार के लोकसभा में दिए गए

बयान के मुताबिक, हर साल 30 हजार करोड़ रुपये से अधिक का अनाज सड़ जाता है। यही नहीं, समर्थन मूल्य पर खरीदे गए गेहूं को सड़ाकर 6.20 रुपये प्रति किलो की दर से शराब कंपनियों को बेच दिया जाता है।

आजादी के समय खाद्यान्न उत्पादन 500 लाख टन था, जो 2012 में 2,500 लाख टन हो गया। लेकिन 1971 से 2011 के बीच शहरीकरण से 33 लाख हेक्टेयर कृषि योग्य भूमि का क्षेत्रफल कम हो गया है। 85 प्रतिशत लघु व सीमांत किसान की, जिनके पास केवल 44 प्रतिशत भूमि है, जोत का आकार भी कम होता जा रहा है। ग्लोबल वार्मिंग के कारण पैदावार घटनी प्रारंभ हो गई है।

कृषि मंत्रालय के मुताबिक, जलवायु परिवर्तन के कारण वर्ष 2020 तक समय पर बोए गए गेहूं की छह प्रतिशत और देर से बोए गए गेहूं की उपज 18 प्रतिशत तक कम हो सकती है। बढ़ते रसायनों के प्रयोग से भी भूमि की उर्वरता लगातार घट रही है।

इसमें दो राय नहीं है कि देश की जनसंख्या को भरपेट भोजन के लिए कृषि व्यवस्था को मजबूत कर खाद्यान्न उत्पादन लगातार बढ़ाया जाए। पर देश की जनसंख्या का 55 प्रतिशत खाद्यान्न उत्पादक किसान भी हैं, जो खाद्य सुरक्षा के केंद्र बिंदु है, लेकिन उनके उत्पादों को लाभकारी मूल्य देने के अधिकार का खाद्य सुरक्षा विधेयक में कोई प्रावधान नहीं किया गया है। खेत मजदूरों की कमी एवं उनकी बढ़ती मजदूरी की लागत तथा डीजल, उर्वरक, कीटनाशक, बीज व बिजली के मूल्यों में वृद्धि से खेती महंगी होती जा रही है।

आजादी के समय सकल घरेलू उत्पाद में कृषि का योगदान 50 प्रतिशत था, जो 2012 में घटकर 13.9 प्रतिशत रह गया। वित्त मंत्रालय के सर्वेक्षण के अनुसार, 55 प्रतिशत से अधिक किसान बैंकों और साहूकारों के कर्ज तले डूबे हुए हैं, तो नेशनल क्राइम रिकार्ड्स ब्यूरो के अनुसार, 1995 से 2011 तक 2,90,740 किसान आत्महत्या कर चुके हैं। पिछले एक दशक से सालाना लगभग सात लाख किसान खेती से अलग होकर दूसरा धंधा अपना रहे हैं। इसी अवधि में खेतिहर मजदूरों की संख्या 3.5 प्रतिशत बढ़ी है।

खाद्य सुरक्षा विधेयक किसान विरोधी है। इसमें उनकी उपज का 33 प्रतिशत हिस्सा ही समर्थन मूल्य पर खरीदने का प्रावधान है। विधेयक में यह भी प्रावधान है कि खाद्य सुरक्षा कानून बनने के तीन वर्षों तक समर्थन मूल्य नहीं बढ़ाया जाएगा। कुपोषण से बचाव के लिए अनाज के साथ तेल तथा दाल आदि देने की व्यवस्था भी इस कानून में नहीं की गई, जो आवश्यक थी।

इसमें दो राय नहीं है कि देश की जनसंख्या को भरपेट भोजन के लिए कृषि व्यवस्था को मजबूत कर खाद्यान्न उत्पादन लगातार बढ़ाया जाए। पर देश की जनसंख्या का 55 प्रतिशत खाद्यान्न उत्पादक किसान भी हैं, जो खाद्य सुरक्षा के केंद्र बिंदु है, लेकिन उनके उत्पादों को लाभकारी मूल्य देने के अधिकार का खाद्य सुरक्षा विधेयक में कोई प्रावधान नहीं किया गया है।

खाद्य सुरक्षा विधेयक किसान विरोधी है। इसमें उनकी उपज का 33 प्रतिशत हिस्सा ही समर्थन मूल्य पर खरीदने का प्रावधान है। विधेयक में यह भी प्रावधान है कि खाद्य सुरक्षा कानून बनने के तीन वर्षों तक समर्थन मूल्य नहीं बढ़ाया जाएगा। कुपोषण से बचाव के लिए अनाज के साथ तेल तथा दाल आदि देने की व्यवस्था भी इस कानून में नहीं की गई, जो आवश्यक थी।

खाद्य सुरक्षा कानून बनने पर देश में खाद्यान्न उत्पादन बढ़ाने का दबाव बनेगा। इसके लिए वर्षा आधारित खेती, फसलों के अवशेषों की रिसाइकिलिंग और पर्यावरण को नुकसान पहुंचाए बगैर कम खर्चीली, टिकाऊ जैविक खेती को प्रोत्साहन देना होगा। भंडारण व्यवस्था को सुरक्षित करने के साथ प्रत्येक कार्डधारक को एक महीने के बजाय छह महीने का राशन देने से भंडारण पर कम खर्चा आएगा। बाजार व्यवस्था में बदलाव के साथ किसानों के लिए उसकी फसल का लाभकारी मूल्य भी निश्चित करना पड़ेगा, ताकि किसान खेती से विमुख न हो और सम्मानजनक जीवन निर्वाह कर सके। कृषि क्षेत्र में सुधार और किसान सुरक्षा के बगैर खाद्य सुरक्षा का लक्ष्य पूरा नहीं होगा। सरकार यदि समय रहते नहीं जागती, तो किसान ही इस

खाद्य सुरक्षा को ध्वस्त कर देंगे। खाद्य सुरक्षा कानून लागू होने के बाद देश पर खाद्यान्न उत्पादन बढ़ाने का दबाव बनेगा। लेकिन तीन साल तक समर्थन मूल्य न बढ़ाने और किसानों से 33 फीसदी से अधिक अनाज समर्थन मूल्य पर न खरीदने के कठोर प्रावधानों को देखते हुए कौन किसान खेती के प्रति उत्साहित होगा? ❑

समस्या

भोजन देने भर से नहीं मिटेगी कुपोषण की समस्या

यूनिसेफ के अनुसार भारत में लगभग सात करोड़ बच्चे सामान्य कद से काफी छोटे हैं। यह संख्या दुनिया में सर्वाधिक है। सरकारी आंकड़ों के अनुसार हमारे देश में पांच वर्ष से कम उम्र के बच्चों में तकरीबन बीस प्रतिशत अपने कद के अनुपात में काफी कमजोर और दुबले–पतले हैं। 2012 के ग्लोबल हंगर इंडेक्स के आंकड़ों के मुताबिक भारत कम वजन के बच्चों के मामले में बांग्लादेश और तिमोर जैसे अल्पविकसित देशों के साथ खड़ा नजर आता है।

■ मुकुल श्रीवास्तव

खाद्य सुरक्षा विधेयकसे हम भुखमरी की समस्या से कुछ हद तक निजात पा लें। परंतु कुपोषण को दूर करने में यह कितनी कारगर होगी, इस पर तमाम सवाल हैं। यह इसलिए अहम है क्योंकि विश्व बैंक के आंकड़ों के अनुसार भारत कुपोषित बच्चों की संख्या के मामले में विश्व में दूसरे स्थान पर है। भविष्य की विश्वशक्ति होने का सपना देखने वाले देश के लिए, जिसे अपने जनसांख्यिकी लाभांश पर बहुत गर्व है, यह एक बेहद चिंताजनक बात है।

यूनिसेफ के अनुसार भारत में लगभग सात करोड़ बच्चे सामान्य कद से काफी छोटे हैं। यह संख्या दुनिया में सर्वाधिक है। सरकारी आंकड़ों के अनुसार हमारे देश में पांच वर्ष से कम उम्र के बच्चों में तकरीबन बीस प्रतिशत अपने कद के अनुपात में काफी कमजोर और दुबले–पतले हैं। 2012 के ग्लोबल हंगर इंडेक्स के आंकड़ों के मुताबिक भारत कम वजन के बच्चों के मामले में बांग्लादेश और तिमोर जैसे अल्पविकसित देशों के साथ खड़ा नजर आता है।

हमारे देश में पांच वर्ष से कम आयु के लगभग 44 प्रतिशत बच्चे सामान्य से कम वजन के हैं। वर्ष 2005 से 2010 के बीच के इन आंकड़ों में हमारी स्थिति इथियोपिया, नाइजर, नेपाल और बांग्लादेश से भी खराब थी। हालांकि विगत कुछ वर्षो से भारत ने इस समस्या से निपटने के लिए कई कदम उठाए हैं पर सही क्रियान्वयन और विश्वसनीय जानकारी के अभाव में वे सभी कदम नाकाफी साबित हुए हैं।

ग्लोबल हंगर इंडेक्स के अनुसार भुखमरी से पीड़ित 80 देशों में भारत 67वें स्थान पर है जो कि एक अत्यंत ही चिंताजनक स्थिति है। एक मिथ जिससे हमारी सरकारें और शासकीय तंत्र ग्रसित है वह यह है कि मात्र आर्थिक विकास से ही कुपोषण की समस्या से निपटा जा सकता है। यदि हम अपने देश के सर्वाधिक विकसित राज्यों में से एक गुजरात की बात करें तो सच्चाई खुद–ब–खुद ही सामने आ जाएगी। गुजरात में 45 प्रतिशत बच्चे कुपोषण का शिकार हैं। खुद सरकारी आंकड़ें बयान करते हैं कि गुजरात में पांच वर्ष से कम आयु का हर

बांग्लादेश, नेपाल, पाकिस्तान और अफगानिस्तान जैसे देश भी खुले शौचालय के मामले में हमसे बेहतर स्थिति में हैं। शौचालयों के न होने का अर्थ है कि लोग खुले में शौच करने के लिए मजबूर हैं जिससे बच्चों में जीवाणु संक्रमण का खतरा बढ़ जाता है, जो छोटी आंतों को नुकसान पहुंचा सकता है। इससे बच्चों के बढ़ने, विकास के लिए आवश्यक पोषक तत्वों को ग्रहण करने की क्षमता या तो कम हो जाती है या रुक जाती है।

दूसरा बच्चा कम वजन वाला है। इन आंकड़ों से यह साफ हो जाता है कि केवल आर्थिक विकास से ही कुपोषण की समस्या से नहीं निपटा जा सकता है। इसके लिए आवश्यकता है जनकेंद्रित प्रयासों की, जिसमें लोगों को इस दिशा में जागरूक करने जैसे विकल्पों पर ज्यादा जोर देने की आवश्यकता है। कुछ राज्य सरकारों ने इस दिशा में कदम उठाने शुरू किए हैं।

कर्नाटक सरकार जल्द ही तीन से छह वर्ष की उम्र के बच्चों में कुपोषण की समस्या से निपटने के लिए आंगनवाड़ी केंद्रों के माध्यम से दूध वितरण की योजना लागू करने जा रही है। छत्तीसगढ़ सरकार भी बच्चों में कुपोषण की समस्या से निपटने के लिए फुलवारी नामक योजना की शुरुआत करने जा रही है। इन योजनाओं का हश्र चाहे जो भी हो पर इस बात को नकारा नहीं जा सकता कि ये कुपोषण से जंग की दिशा में सराहनीय प्रयास हैं और हमारे देश को ऐसी अनेक योजनाओं की जरूरत है। खाद्य एवं कृषि संस्था (एफएओ) के अनुसार भारत की लगभग 22 प्रतिशत आबादी कुपोषित है।

राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वे के अनुसार भारत में पांच वर्ष से कम आयु के लगभग 48 प्रतिशत बच्चे बौनेपन और लगभग 43.5 प्रतिशत बच्चे कम वजन की समस्या से ग्रसित हैं। एक अंतरराष्ट्रीय संस्था द्वारा 1970 से 1976 के बीच 63 देशों में कराए गए एक सर्वे के अनुसार उस दरम्यान उन देशों में कुपोषण में जो कमी आई उसका एक प्रमुख कारक महिलाओं की साक्षरता दर में वृद्धि थी।

हमारे देश में भी महिलाओं का निरक्षर होना और पर्याप्त साफ–सफाई के परिवेश का न होना बच्चों में कुपोषण का एक बड़ा कारक है। लेकिन सरकार के लिए देश के इतने बच्चों का कद गिरने से अधिक महत्वपूर्ण रुपए की कीमत में गिरावट आना लगता है। बच्चियों के संदर्भ में हालात और भी बदतर हैं, जहां गांवो में तेजी से बढ़ती लड़कियों की खुराक इसलिए कम कर दी जाती है कि वे ज्यादा बड़ी न लगें।

इसके अलावा भारत की पहचान एक ऐसे देश के रूप में है जहां दुनिया के खुले में शौच करने वालों की साठ प्रतिशत जनसंख्या मौजूद है। और उस मल के उचित प्रबंधन की भी कोई व्यवस्था नहीं है। अंदाजा लगाया जा सकता है कि स्थिति कितनी शोचनीय है। बांग्लादेश, नेपाल, पाकिस्तान और अफगानिस्तान जैसे देश भी खुले शौचालय के मामले में हमसे बेहतर स्थिति में हैं। शौचालयों के न होने का अर्थ है कि लोग खुले में शौच करने के लिए मजबूर हैं जिससे बच्चों में जीवाणु संक्रमण का खतरा बढ़ जाता है, जो छोटी आंतों को नुकसान पहुंचा सकता है। इससे बच्चों के बढ़ने, विकास के लिए आवश्यक पोषक तत्वों को ग्रहण करने की क्षमता या तो कम हो जाती है या रुक जाती है। फिर इससे कोई असर नहीं पड़ता कि उन्होंने कितना भोजन खाया है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन की रिपोर्ट के अनुसार भारत में पांच वर्ष से कम आयु के बच्चों के कुपोषित होने की मुख्य वजह दस्त है। विश्व में प्रत्येक वर्ष इस उम्र वर्ग के 80 लाख से ज्यादा बच्चों की दस्त से मृत्यु होती है और इनमें से एक चौथाई मौतें भारत में होती हैं।

कुपोषण एक स्वास्थ्य समस्या के साथ–साथ भारत के संदर्भ में एक सांस्कृतिक जटिलता भी है जहां खुले में शौच को सामाजिक मान्यता मिली हुई है। पर इस मान्यता से कितनी तरह की स्वास्थ्य समस्याएं पैदा हो रही हैं, इस ओर लोगों का ध्यान कम ही जाता है। इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली में प्रकाशित एक शोध पत्र में यूनिवर्सटी ऑफ ससेक्स और यूनिसेफ ने यह निष्कर्ष निकाला है कि स्वच्छता और कुपोषण के बीच संबंध को व्यापक तौर पर अनदेखा किया जा रहा है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन की रिपोर्ट के अनुसार भारत में पांच वर्ष से कम आयु के बच्चों के कुपोषित होने की मुख्य वजह दस्त है। विश्व में प्रत्येक वर्ष इस उम्र वर्ग के 80 लाख से ज्यादा बच्चों की दस्त से मृत्यु होती है और इनमें से एक चौथाई मौतें भारत में होती हैं। इसका सीधा– सा आशय यह है कि स्वच्छता योजनाओं पर अंधाधुंध पैसा बहाने के बजाए लोगों को जागरूक करने के लिए संवेदनशील कदम उठाए जाने की जरूरत अधिक है। नन्हें–मुन्हों की मुट्ठी में उनका भविष्य तभी सुरक्षित है जब उनकी मुट्ठियां साफ और कीटाणु रहित होंगी। कुपोषण के विभिन्न आयाम हैं। स्वच्छता की कमी, साफ पीने के पानी की अनुपलब्धता, शौचालयों का अभाव एवं मूलभूत स्वास्थ्य सुविधाओं की कमी भी कुपोषण के कुछ प्रमुख कारक हैं। सरकार भोजन की उपलब्धता की गारंटी तो सुनिश्चित कर रही है पर वह भोजन कैसा होगा और किन परिस्थितियों में उसका उपयोग किया जाएगा, यह तथ्य पूरी तरह से नजरंदाज किया जा रहा है। ❑

आखिर कब तक रहेंगे किसान बदहाल. . .!

कुल मिलाकर सचाई यह है कि कई राज्यों द्वारा छिपा दिए गए आंकड़ों के बावजूद 1995 से अब तक देश में 2,84,694 किसानों ने आत्महत्याएं की हैं। निश्चय ही किसान आत्महत्याओं को नियंत्रित करने के बजाए, उन्हें हटाने या दूसरे वर्ग में डालने से समस्या का हल नहीं निकलने वाला। आंकड़ों की बाजीगरी दिखाते हुए किसान आत्महत्याओं को स्वीकार न करें। लेकिन इससे किसी का भला नहीं होने वाला।

■ **सुभाष चन्द्र कुशवाहा**

उदारीकरण के छल–प्रपंचों, व्यावसायिक दृष्टिकोण और परनिर्भरता की कूटनीति के चलते किसानों का सुख–चैन निगल लिया गया है। एक आत्मनिर्भर समाज को परनिर्भर ही नहीं बनाया गया है, उसकी जल, जमीन, जंगल, बीज और खेती की स्वास्थ्यवर्धक नीतियों को हड़प कर, उसके बनिस्बत आरोपित बीज, खाद, कीटनाशकों के जरिये खेती को खर्चीला, अस्वास्थ्यवर्धक और अलाभप्रद बना दिया गया है।

किसानों को इस कदर तोड़ कर रख देने का बहाना ढूंढा जा रहा है कि खेती करना उसके वश में न रहे। बड़े–बड़े सब्ज–बाज दिखा कर कोशिश हो रही है कि उसकी खेती–किसानी को बड़े–बड़े कारपोरेट हथिया लें या ट्रैक्टर, कंबाइन से लैस गांव के पुराने सामंत एक बार फिर किसानों को कुछ लालच दिखाकर खेती–किसानी को अपने नियंत्रण में ले लें।

राष्ट्रीय अपराध अभिलेख सूचना केन्द्र (नेशनल क्राइम रिकार्ड ब्यूरो) कई सालों से किसानों की आत्महत्या की बढ़ती प्रवृत्तियों की ओर ध्यान आकृष्ट करता रहा है। किसान आत्महत्याओं का प्रतिशत इन आंकड़ों से कहीं अधिक बताया जाता है, फिर भी अगर संस्थान के आंकड़ों की ही बात करें तो भी स्थिति भयावह है।

किसानों से उनकी खेती का छिनना, उनके स्वाभिमान, सत्ता और संस्कृति का छिन जाना है। ऐसे में ग्राम समाज,

मनोवैज्ञानिक दास समाज में परिणत होने की ओर अग्रसर कर दिया गया है। गैस पर निर्भर ऊर्जा और रसायन उत्पादों की कीमतों में बेतहाशा वृद्धि निश्चित रूप से पहले से ही बिजली, पानी और रासायनिक खाद की मार झेलते किसानों को आत्महत्या को मजबूर करेगी।

राष्ट्रीय अपराध अभिलेख सूचना केन्द्र (नेशनल क्राइम रिकार्ड ब्यूरो) कई सालों से किसानों की आत्महत्या की बढ़ती प्रवृत्तियों की ओर ध्यान आकृष्ट करता रहा है। किसान आत्महत्याओं का प्रतिशत इन आंकड़ों से कहीं अधिक बताया जाता है, फिर भी अगर संस्थान के आंकड़ों की ही बात करें तो भी स्थिति भयावह है।

पी. साई नाथ के एक राष्ट्रीय पत्र में प्रकाशित लेख के मुताबिक महाराष्ट्र में जहां 2011 में 3,337 किसानों ने आत्महत्याएं कीं वहीं 2012 में 3,786 अर्थात गत वर्ष की तुलना में 13.5 प्रतिशत अधिक ने जीवन लीला समाप्त की। महाराष्ट्र में 1995 से 2012 तक कुल 57,604 किसानों ने आत्महत्या की। आंध्र में 2011 में 2206 और 2012 में 2572 अर्थात गत वर्ष के सापेक्ष 16.6 प्रतिशत अधिक किसानों ने आत्महत्याएं कीं।

आंध्र प्रदेश में किसान आत्महत्या की

किसान क्रेडिट कार्ड से बैंक अफसर को घूस दिए बिना कर्ज मिलता भी नहीं। ऐसे में चार प्रतिशत ब्याज की दर, सात प्रतिशत के आसपास ही पड़ती है। खेती–किसानी जिस देश की प्राण, संस्कृति और सरोकार रही है उसे मोबाइल, इंटरनेट और मॉल संस्कृति के मध्यमवर्गीय आकर्षण में उलझा दिया गया है।

दर पूरे देश की तुलना में तीन गुना ज्यादा है। यहां गैर किसान आत्महत्याओं की वार्षिक दर की तुलना में किसान आत्महत्या दर दुगुनी है। केवल कर्नाटक और मध्यप्रदेश में 2011 की तुलना में 2012 में क्रमशः 225 और 154 कम आत्महत्याएं हुईं।

यद्यपि कुछ राज्यों ने चालाकी से आंकड़ों को दूसरे वर्ग में डाल किसान आत्महत्याओं को अत्यधिक कम कर दिया है जैसे छत्तीसगढ़ में 2009 से 2011 तक प्रति वर्ष औसतन 1567 किसानों ने आत्महत्याएं की थीं लेकिन 2012 में यह आंकड़ा महज चार का दिखाया गया जबकि इसी राज्य में 2001 से 2010 के मध्य 18,375 किसानों ने आत्महत्या की।

पश्चिम बंगाल ने गत वर्ष किसी भी किसान आत्महत्या को नकारा है जबकि 2009 से 2011 तक वहां औसतन 951 किसानों ने आत्महत्या की थी। इस औसत को यहां के किसान आत्महत्या की वास्तविक संख्या मानें तो देश में इस बीच लगभग 16,272 किसानों ने आत्महत्या की है। केरल में 2011 में 830 और 2012 में 1081, उत्तर प्रदेश में 2011 में 645 और 2012 में 745, तमिलनाडु में 2011 में 623 और 2012 में 499 किसानों ने आत्महत्याएं कीं।

कुल मिलाकर सचाई यह है कि कई राज्यों द्वारा छिपा दिए गए आंकड़ों के बावजूद 1995 से अब तक देश में 2,84,694 किसानों ने आत्महत्याएं की हैं। निश्चय ही किसान आत्महत्याओं को नियंत्रित करने के बजाए, उन्हें हटाने या दूसरे वर्ग में डालने से समस्या का हल नहीं निकलने वाला। आंकड़ों की बाजीगरी दिखाते हुए किसान आत्महत्याओं को स्वीकार न करें। लेकिन इससे किसी का भला नहीं होने वाला।

एशियन कॉलेज ऑफ जर्नलिज्म के प्रो. नागराज के अध्ययन के अनुसार किसान आत्महत्याएं मुख्यतः पांच राज्यों– महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़ में दिख रही थीं परन्तु हाल–फिलहाल, उत्तर प्रदेश का बुंदेलखंड भी इसमें शामिल हो चुका है।

किसान आत्महत्या का सबसे बड़ा कारण, खेती कि सानी के लिए लिया गया कर्ज है। किसान क्रेडिट कार्ड के उलझाऊ नियम, अनपढ़ किसानों की समझ से बाहर हैं। अमूमन चार प्रतिशत ब्याज दर पर कर्ज का अर्थशास्त्र इस प्रकार है– किसान क्रेडिट कार्ड से कर्ज लेने वाले किसानों को केन्द्र सरकार ब्याज में 2 प्रतिशत छूट देती है। इस प्रकार उनके कर्ज पर 7 प्रतिशत ब्याज पड़ता है। समय पर भुगतान करने पर केन्द्र की ओर से तीन प्रतिशत ब्याज सब्सिडी दी जाती है। इस प्रकार समय से भुगतान करने वालों को किसान क्रेडिट कार्ड पर लिये कर्ज पर मात्र चार फीसद ब्याज पड़ता है पर भुगतान में देरी होते ही ब्याज सामान्य दर पर लागू हो जाता है जो 11 से 14 प्रतिशत के बीच होता है।

किसान आत्महत्याएं मुख्यतः पांच राज्यों– महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़ में दिख रही थीं परन्तु हाल–फिलहाल, उत्तर प्रदेश का बुंदेलखंड भी इसमें शामिल हो चुका है।

कई बैंक सामान्य ब्याज दरों के अलावा, देर से भुगतान पर 2 प्रतिशत पेनल्टी भी लगाते हैं लिहाजा कुल ब्याज दर 14 से 15 प्रतिशत हो जाती है। बड़े और संपन्न किसान तो ऐसे कर्ज के सहारे दूसरे व्यवसाय चमकाते हैं, पर समय पर कर्ज न चुका पाने के कारण अक्सर छोटे किसानों का अंत आत्महत्या में होता है।

किसान क्रेडिट कार्ड से बैंक अफसर को घूस दिए बिना कर्ज मिलता भी नहीं। ऐसे में चार प्रतिशत ब्याज की दर, सात प्रतिशत के आसपास ही पड़ती है। खेती–किसानी जिस देश की प्राण, संस्कृति और सरोकार रही है उसे मोबाइल, इंटरनेट और मॉल संस्कृति के मध्यमवर्गीय आकर्षण में उलझा दिया गया है।

दुनिया को विकास का नया मॉडल देने वालों ने तीसरी दुनिया के खेती कि सानी के औचित्य पर सवाल शुरू कर दिया है और विकल्प के तौर पर केएफसी, मैकडॉनल्ड की दुकानों का विस्तार हो रहा है। बीज पर महाप्रभुओं का एकाधिकार है। परंपरागत बीज हैं। हाईब्रीड बीजों के विक्रेता ही उनके उत्पादक हैं। किसान खाद, बीज, कीटनाशकों के लिए बहुराष्ट्रीय कंपनियों का दास है। मोनसैंटो के बीजों के लिए बहुत कीटनाशक, पानी व रासायनिक खाद चाहिए। ❑

समाचार परिक्रमा

गिरते रुपए के कारण आर्थिक विकास को लगा झटका

एक बार फिर आर्थिक मोर्चे पर भारत की मुश्किलें कम होती नहीं दिख रही है। अब अप्रैल–जून तिमाही में आर्थिक वृद्धि दर (जीडीपी) घटकर चार साल के न्यूनतम 4.4 प्रतिशत पर आ गई है। बीते वर्ष 2012–13 की अप्रैल–जून तिमाही में जीडीपी वृद्धि दर 5.4 फीसदी रही थी। संभावना है कि जीडीपी की घटती वृद्धि दर से उद्योगों का विस्तार कम होगा और जिसका सीधा असर नौकरियों पर भी पड़ेगा। केंद्रीय सांख्यिकी संगठन ने यह आंकड़ा जारी किया है। यह लगातार तीसरी तिमाही है जब जीडीपी 5 प्रतिशत से नीचे रही है। आंकड़ों के मुताबिक चालू वित्त वर्ष की पहली तिमाही में निर्माण एवं खनन क्षेत्र के उत्पादन में भी गिरावट आई है। पिछले साल इसी अवधि की तुलना में घटा है। इसके अलावा निर्माण, बिजली उत्पादन, होटल एवं परिवहन सहित अन्य क्षेत्रों में भी कमी दर्ज की गई है। डॉलर के मुकाबले रुपया 68 के आसपास जा पहुंचा था। इसके अलावा सीरिया में युद्ध के बादल घिरने से रुपये पर दबाव बढ़ेगा, पेट्रोलियम पदार्थों के दाम तेजी से बढ़ रहे हैं और रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया ने रुपये को बचाने के लिए बाजार से नकदी घटाने के जो उपाय किए हैं, उसका असर थोड़ा बहुत हुआ है। फिर भी देखा जाए उद्योगों को पूंजी के लिए ज्यादा खर्च करना पड़ेगा ही। इसका असर मैन्युफैक्चरिंग पर पड़ेगा। मैन्युफैक्चरिंग का विकास किसी भी देश की अर्थव्यवस्था के विकास के लिए सबसे महत्वपूर्ण शर्तों में से है। अर्थव्यवस्था का स्थायी विकास औद्योगिक उत्पादन के विकास से जुड़ा होता है, लेकिन भारत में तेज विकास मुख्यतः सेवा क्षेत्र के विकास की वजह से हुआ। जब भारतीय अर्थव्यवस्था लगभग 10 प्रतिशत की विकास दर छूने को थी, तब भी औद्योगिक उत्पादन में विकास की दर उस स्तर की नहीं थी। सेवा क्षेत्र के हमारे तेज विकास का वक्त वही था, जब दुनिया में आईटी और दूरसंचार क्षेत्र में क्रांति हो रही थी। 2–जी जैसे घोटालों ने दूरसंचार की गति को थाम लिया और वैश्विक आर्थिक मंदी ने आईटी क्षेत्र को धीमा कर दिया। इस बीच औद्योगिक उत्पादन को तेज करने के लिए जो कोशिशें जरूरी थीं, वे नहीं की गईं। जमीन अधिग्रहण, बुनियादी ढांचे का अभाव, ऊर्जा के साधनों की कमी, भ्रष्टाचार, लालफीताशाही जैसी कई वजहें हैं, जिन्होंने हर स्तर पर औद्योगिक उत्पादन को प्रभावित किया। इन तमाम अनिश्चितताओं की वजह से निवेशक भारत में आने से कतराने लगे और अब भारतीय उद्योगपति विदेशों में निवेश की ओर मुड़ गए। ❑

रुपए की गिरावट रोकने में अफसल यूपीए-2 सरकार : आडवाणी

लालकृष्ण आडवाणी (भाजपा) के अनुसार यूपीए सरकार जिस तरह रुपए में गिरावट और आर्थिक मंदी को रोकने में विफल रही है और जिस तरह से बहाने तलाशने का प्रयास करती रही है। फलस्वरूप आम आदमी से लेकर उद्योग जगत तक परेशान है। यूपीए–2 सरकार की गलत आर्थिक नीतियों के कारण भारत की दुनियाभर में आर्थिक छवि भी खराब हो रही है। पिछले महीने सभी चर्चाओं का केंद्र बिन्दु गंभीर आर्थिक संकट रहा, जिसका सामना देश कर रहा है। डॉलर के मुकाबले रुपए की कीमत में भयावह गति से गिरावट आई है। उन्होंने कहा कि कई स्तंभकारों ने रुपए में गिरावट और आर्थिक मंदी को नियंत्रित करने में विफल रहने के लिए यूपीए–2 सरकार की जमकर निन्दा की है। मौजूदा संकट का स्मरण 1991 के रूप में वे देख रहे हैं, जब पी.वी. नरसिंह राव के नेतृत्व वाली कांग्रेस सरकार ने भारत के 67 टन स्वर्ण भंडार के बदले अंतराष्ट्रीय मुद्राकोष से 2.2 अरब डॉलर आपात कर्ज लेना पड़ा था। ❑

सीरीया पर हमले के संकट से जनता चिंतित - सरकार सुस्त

अगर आज सीरिया पर हमला हुआ तो भारतीय अर्थव्यवस्था और खराब हो सकती है। जहां सीरिया संकट से अंतरराष्ट्रीय बाजार में कच्चे तेल की कीमतों में वृद्धि की आशंका है, वही कच्चे तेल की आपूर्ति बाधित होने का भी खतरा पैदा हो सकता है। कच्चा तेल आयात करने में भारत दुनिया में चौथे स्थान पर है। हम अपनी जरूरत का 80 प्रतिशत कच्चा तेल आयात करते हैं और सबसे ज्यादा सऊदी अरब से, फिर इराक, कुवैत ईरान और कतर से। सीरिया पर अमरीका हमला करता है तो इराक से कच्चे तेल की आपूर्ति बाधित होगी। कई विशेषज्ञों की राय है कि तेल की कीमतें हमले के समय 150 डॉलर प्रति बैरल को भी पार कर सकती है। वही दूसरी तरफ भारतीय सरकार कहा रही है कि सीरिया संकट से आपूर्ति में कोई रुकावट नहीं आएगी। परंतु सरकार को अभी से कमर कस लेनी चाहिए अन्यथा जहां देश आज महंगाई और बढ़ते पेट्रौल, डीजल से परेशान है वही अगर हमला हुआ तो तब क्या होगा...!! इसके लिए सरकार अभी से चिंतित दिखाई नहीं देती। ❑

सीरिया पर तीन दिन तक बम बरसाने की अमरीकी योजना

अमरीकी अखबार 'लॉस एंजिलिस टाईम्स' के अनुसार अमरीका तीन दिनों तक सीरिया पर बम बरसाने की तैयारी कर रहा है। व्हाइट हाउस और पेंटागन में यह सोच बढ़ती जा रही है कि सीरिया में उससे ज्यादा हमले करने पड़ेंगे जितना पहले सोचा जा रहा था। ❑

सस्ता कर्जा और विश्वास बहाली से सुधरेगी अर्थव्यवस्था

घरेलू अर्थव्यवस्था में गहराती नरमी को दूर करने के लिए आर्थिक विशेषज्ञों ने कर्ज सस्ता किए जाने पर बल दिया है जिससे उद्योग धंधों में निवेश बढ़े और आर्थिक गतिविधियों को बल मिले। वही कुछ विशेषज्ञों का मानना है कि रुपए को संभालने के लिए सरकार को प्रवासी भारतीयों के लिए विदेशी मुद्रा बॉन्ड जारी करने चाहिए। इससे चालू खाते का घाटा काबू में रखने में मदद मिलेगी। उनका मानना है कि सरकार सावरेन बॉन्ड भी जारी कर सकती है पर इसमें कुछ जोखिम है। वाणिज्य एवं उद्योग मंडल के मुख्य अर्थशास्त्री एस.पी. शर्मा के अनुसार अर्थव्यवस्था में नकदी की तंगी से समस्या बढ़ी है। दीर्घकालिक पूंजी के लिए हमें इक्विटी बाजार को आकर्षक बनाने की जरूरत है और यह तभी होगा जब औद्योगिक गतिविधियां तेज होगी। पूंजी बाजार विशेषक के.के. मित्तल के अनुसार आज विश्वास बहाली मजबूत किए जाने की आवश्यकता है। सरकार को निवेशकों का विश्वास बढ़ाने के लिए हर संभव कदम उठाने चाहिए। साथ ही विदेशी मुद्रा की उपलब्धता बढ़ाने के लिए पर्यटन को सुविधाजनक बनाया जाए। ❑

गिरते रुपये ने अरबपतियों की संपत्ति को घटाया

डॉलर के मुकाबले रुपए में गिरावट से जहां आम आदमी परेशान है वहीं देश के सबसे धनी लोग भी परेशान व चिंतित है। गिरते रुपए ने अरबपति की संपत्ति में काफी गिरावट कर दी है। देश के सबसे धनवान व्यक्ति मुकेश अंबानी की दौलत मार्च से अब तक पांच अरब डॉलर घट चुकी है। वही रुपए में गिरावट की वजह से नुकसान उठाने वालों में सूचना प्रौद्योगिकी कंपनी विप्रो के संस्थापक अजीम प्रेमजी दूसरे स्थान पर है। इस अवधि में उनकी संपत्ति करीब ढाई अरब डॉलर से ज्यादा घटी है। दिलीप सांघवी (सन फार्मास्यूटिकल) 2.2 अरब डॉलर; शशि व रवि रूइया 2.2 अरब डॉलर; के.एम बिड़ला 1.6 अरब डॉलर; सुनील मित्तल 1.6 अरब डॉलर; सावित्री जिंदल 1.8 अरब डॉलर; शिव नादर 1.5 अरब डॉलर, अनिल अंबानी 1.2 अरब डॉलर और के.पी. सिंह 1.5 अरब डॉलर संपत्ति घटी है। ❑

स्टील उत्पाद महंगे, बढ़ेगी घर की लागत

बढ़ती महंगाई के दौर में मकान बनाना अब और महंगा हो गया है। डॉलर के मुकाबले रुपये के भारी अवमूल्यन, तेल की कीमतों में बढ़ोतरी और परिवहन लागत में वृद्धि को ध्यान में रखते हुए स्टील के दामों में मूल्यवृद्धि इस्पात कंपनियों ने कर दी है। प्रमुख इस्पात निर्माता कंपनियां जैसे सेल, एस्सार स्टील, जिंदल स्टील एंड पावर और जेएसडब्ल्यू स्टील ने अपने उत्पादों के दाम रुपए 2500 प्रति टन तक बढ़ा दिए हैं। चालू माह के लिए यह मूल्यवृद्धि की गई है। जिंदल स्टील एंड पावर लि. (जेएसपीएल) के उप प्रबंध निदेशक एवं सीईओ (इस्पात बिजनेस) वी आर शर्मा के अनुसार बढ़ते तेल और डॉलर के मुकाबले गिरते रुपए का कारण कंपनियों ने अपने उत्पादों की कीमत बढ़ाई है। ❑

पानी की तरह तेल फूंक देते है मंत्री और सरकारी बाबू

एक तरफ सरकार रात को पेट्रोल पंप बंद रखने की बात करती है फिर दूसरे दिन पलट जाती है। जनता से पेट्रोल की खपत कम करने की बात करती है ताकि तेल का आयात कम से कम किया जाए। यह सलाह वो जनता को देती है परंतु खुद पर अमल नहीं करती। अगर आज मंत्रियों और सरकारी अफसरों द्वारा की जा रही तेल की बेकद्री पर लगाम कस दी जाए तो आधी समस्या खुद ही हल हो जाएगी। मजेदार बात है कि सरकार के पास कोई हिसाब किताब ही नहीं कि मंत्री और सरकारी बाबू तेल पर कितना खर्च करते है वह तो केवल जनता के लिए पेट्रोल के दाम बढ़ती है पर अपने सरकारी खर्च को कम नहीं करती। साल 2011–12 में केंद्र सरकार का खर्च 5,200 करोड़ रुपये था। इसका एक बड़ा हिस्सा फ्यूल पर खर्च किया गया था।

आज केंद्र सरकार में 77 केंद्रीय मंत्री हैं और उनमें से हर एक के पास 3 स्टाफ कारें हैं। अगर हम 200 लीटर प्रति माह लगाई जाए, तब भी कुल मिलाकर 46,200 लीटर तेल खर्च होता है। आज पेट्रोल की कीमत 74.10 रुपये के हिसाब से लगाई जाए, तो केंद्रीय मंत्रियों और बाबुओं का तेल का खर्चा 230 करोड़ रुपये प्रति महीना बैठता है। अर्थात् साल में 2,760 करोड़ रुपये। मंत्रियों और बाबुओं के फ्यूल भरवाने पर कोई लिमिट तय नहीं है। यानी असल में यह खर्च 3,000 करोड़ रुपये सालाना के आसपास बैठेगा। इसके अलावा डिफेंस, रेलवे और इंटेलिजेंस आदि अधिकारियों हर राज्य के अधिकारियों का भी का पेट्रोल खर्च जोड़ा जाए तो सैकड़ों करोड़ रुपए बैठगा और सरकार को जहां महंगाई और आम आदमी के बारे में सोचना चाहिए वही सरकारी खुद पर अमल नहीं करके जनता पर सारा बोझ डालती है। ❑

जैविक खाद से किसान मालामाल

एक समय देश में रासायनिक खाद का इस्तेमाल खेतों में खूब किया जाता था लेकिन जैसे–जैसे इसके दुष्परिणाम सामने आने लगे उससे काफी किसानों ने रासायनिक खाद का इस्तेमाल छोड़ने लगे है। जिसके फलस्वरूप आज जैविक खेती का आकर्षण बढ़ रहा है। रासायनिक खाद के प्रयोग के बिना भी हम अपने खेत से अच्छी उपज ला सकते है। इसकी मिसाल जनपद कुशीनगर के हाटा विकास खण्ड के पिपरही भड़कुलवा निवासी वशिष्ठ सिंह हैं।

वशिष्ठ सिंह जी खुद ही जैविक खाद तैयार करते हैं और वही खाद अपने खेतों में डालते हैं। इन्होंने गन्ने के साथ सब्जी की खेती कर दोहरा लाभ कमाया है। जैविक खाद के प्रयोग से अपने खेतों में 13 फीट तक की लम्बाई के गन्ने पर प्रति एकड़ 700 कुन्तल गन्ने की पैदावार भी कर रहे है। खेत में तैयार गन्ने को ये मिलों को न देकर बीज के रूप में इसे अपने खेतों से ही मिल से अधिक दाम पर बेच देते है।

किसी समय वे मुम्बई की एक फर्म में अच्छे वेतन पर कार्य करते थे। लेकिन खेती कराने के लिए छुट्टी लेकर गांव आ जाते थे तथा उन्नतिशील बीजों का प्रयोग कर अच्छा लाभ कमा लेते थे। इस लाभ को देखकर उन्होंने तीन वर्ष पूर्व नौकरी से हमेशा के लिए छुट्टी ले ली और बतौर रोजगार के रूप में खेती शुरू कर दी।

अब वे फसल का उत्पादन लेने के लिए जहां नई तकनीक व जैविक खादों की प्रचुर मात्रा में प्रयोग करते हैं वहीं बीजों की नई प्रजाति का भी इस्तेमाल करते है। उनके अनुसार वे तीन एकड़ भूमि में केवल खाने के लिए ही धान व गेहूं की बुवाई करते हैं और बाकी जो जमीन है उसमें गन्ने का उत्पादन करते हैं। गन्ने के साथ–साथ सब्जी की खेती से भी उन्हें अच्छा लाभ मिलता है। ❑

इंटरनेट की दुनिया में बढ़ते भारत की धमक

मार्क जुकरबर्ग (फेसबुक संस्थापक) ने इंटरनेट प्रसार के क्षेत्र में भारत को एक बड़ा अवसर करार दिया है। यह बात उन्होंने पांच अरब नए लोगों को इंटरनेट से जोड़ने की अपनी महत्त्वाकांक्षी योजना के बारे में कही। डिजिटल माप और विश्लेषण से जुड़ी कंपनी कॉमस्कोर अपनी ताजा रपट में कह चुकी है कि अमरीका और चीन के बाद इंटरनेट पर सबसे ज्यादा यूजर भारत के है। जाहिर है जुकेरबर्ग से कॉमस्कोर तक की बातें आईटी क्षेत्र में भारत की संभावना के साथ उसकी क्षमता को भी साबित करती है। जिस तेजी से भारत में इंटरनेट का प्रसार हुआ है उसने एक बड़े मतदाता वर्ग को अपने में समेटा है। आज भारतीय राजनीति में सोशल मीडिया की अहमियत लगातार बढ़ रही है। देश की प्रमुख पार्टियां इंटरनेट के जरिये संपर्क और प्रचार में जोर दे रही है। नरेन्द्र मोदी (भाजपा) की अगुआई में एक मीडिया वर्कशॉप करके इंटरनेट के जरिये प्रचार–प्रसार पर बल दे रही है वही दूसरी तरफ कांग्रेस भी अपने नेताओं को साइबर प्रचार करने पर जोर दे रही है। आजकल अनेक नेता ट्वीट करके विभिन्न मसलों पर अपना पक्ष रखते हैं या कोई जानकारी देते है। सोशल मीडिया इन्हें ही सुखियां बनाता है। भारतीय बॉलीवुड ने भी सोशल मीडिया में अपनी पकड़ बन रखी है। ट्विटर या फेसबुक पर सबसे ज्यादा फालोअर यही से है। ❑

आईटी क्षेत्र में शीर्ष पर भारतीय हस्तियां

आज भारत में इंटरनेट काफी तेजी से आगे बढ़ रहा है। इस क्षेत्र के आगे बढ़ने में भारतीय युवा वर्ग आबादी का होना है। इतना ही नहीं इन युवा यूजर की पृष्ठभूमि में अत्यधिक विभिन्नता भी है। आज इंटरनेट ने दुनिया को जहां आपस में मिला दिया है वहीं आईटीक्षेत्र में भारतीय हस्तियां भी पीछे नहीं है। आईटीक्षेत्र में कुछ भारतीय हस्तियां के नाम इस प्रकार है :– **अजीत बालाकृष्णन** – रेडीफडॉटकॉम के संस्थापक और अध्यक्ष। **राजू वनपला** – देश की पहली निःशुल्क एसएमएस सेवा – वेटूएसएमएस डॉट कॉम के संस्थापक और सीईओ। **अजय वी भट्ट** – यूनिवर्सल सीरियल बस डिवाइस के सहसंस्थापक और इंटेल रॉक स्टार के रूप में महशूर हैं। **सब्बीर भटिया** – दुनिया की पहली वेबमेल सेवा हॉटमेलडॉटकॉम के सहसंस्थापक। **नारायण मूर्ति** – इंफोसिस टेक्नोलॉजीज के सहसंस्थापक। **विनोद धाम** – पेंटियम चिप के जनक और 'फाल्स मेमोरी' के सह–खोजकर्ता। **शशि रेड्डी** – दुनिया की सबसे बड़ी साफ्टवेयर परीक्षण और गुणवत्ता प्रबंधन कंपनी एपलैब्स के संस्थापक व कार्यकारी अध्यक्ष। **प्रणव मिस्त्री** – सिक्ससेंस के संस्थापक और सिक्स्थ सेंस टेक्नोलॉजी पर काम के लिए प्रसिद्ध। **कृष्णा भरत** – गूगल न्यूज के रचयिता। **अजीम प्रेमजी** – विप्रो टेक्नोलॉजीज के संस्थापक और अध्यक्ष साथ ही देश में भारत के बिल गेट्स के नाम से प्रसिद्ध हैं। ❑

ओलंपिक के दंगल में जीत गई कुश्ती

आखिर कार कुश्ती ने अंतरराष्ट्रीय ओलंपिक समिति (आईओसी) के मतदान में ओलंपिक खेलों में अपना स्थान दोबारा हासिल कर लिया। कुश्ती ने ओलंपिक में बने रहने की होड़ में दो अन्य खेलों स्क्वैश और सॉफ्टबॉल–बेसबाल को पछाड़ दिया। अंतरराष्ट्रीय ओलंपिक समिति ने 125वें सत्र में यह महत्वपूर्ण फैसला किया गया कि कुश्ती ओलंपिक में बनी रहेगी। इसके साथ ही कुश्ती का 2020 तोक्यो ओलंपिक और 2024 ओलंपिक का हिस्सा बनना तय हो गया है। कुश्ती ने जोरदार तरीके से ओलंपिक में वापसी की। कुश्ती को इस साल फरवरी में 15 सदस्यीय आईओसी कार्यकारी बोर्ड ने ओलंपिक कार्यक्रम से बाहर कर दिया था लेकिन इसकी काफी आलोचना हुई थी। इसी बोर्ड ने इसके बाद कुश्ती को दूसरा मौका दिया जब मई में आठ खेलों में प्रेजेंटेशन के बाद कुश्ती को उन तीन खेलों की सूची में शामिल कर लिया गया जिन्हें ओलंपिक में शामिल करने पर ब्युनस आयर्स में आईओसी के पूर्ण सदस्यों को विचार करना था।❑

सुप्रीम कोर्ट का अंग्रेजी मोह

आज जहां इंटरनेट पर हिन्दी का वर्चस्व बढ़ रहा है साथ ही मोबाइल फोन कंपनियां भी हिन्दी को बढ़ावा देने के लिए दोनों भाषा का साफ्वेयर फोन पर उपलब्ध करवा रही है। वही दूसरी तरफ सुप्रीम कोर्ट खुद अंग्रेजी पर अड़ा है। अदालती कार्यवाही तो छोड़ो, वह सूचनाओं की जानकारी भी हिंदी में देने को तैयार नहीं है। जब गृहमंत्रालय के राजभाषा विभाग के अनुरोध के बावजूद सुप्रीम कोर्ट अपने फैसलों (सुप्रीम कोर्ट रिपोर्ट्स) का प्रकाशन हिंदी में करने को राजी नहीं है। सुप्रीम कोर्ट के इस रवैये के खिलाफ अब मामला केंद्रीय सूचना आयोग (सीआइसी) पहुंच गया है। इसमें सुप्रीम कोर्ट से आरटीआई कानून के तहत मांगी गई सूचना हिंदी में ही दिलाने की मांग की गई है। हिंदी को राजभाषा का दर्जा जरूर दे दिया गया है, लेकिन जितनी उपेक्षित वह आजादी के समय थी, उतनी ही आज है। हर साल पहली से 15 सितंबर तक हिंदी पखवाड़ा मनाया जाता है। इस बीच हिन्दी काफी आगे बढ़ी, लेकिन सुप्रीम कोर्ट अपने प्रकाशन और सूचनाएं अंग्रेजी में ही देता रहा है। ❑

युवा मतदाताओं से राजनीतिक दलों में बढ़ी बैचेनी

देश में हर साल नौजवान मतदाताओं की संख्या बढ़ रही है। इससे राजनीतिक दलों के लिए चुनौती बढ़ रही है। अब राजनीतिक दल नौजवानों का मिजाज भांपने की हर कोशिश कर रहे हैं। जनसंख्या के ताजा आंकड़े बताते हैं कि देश में 18 से 35 साल की उम्र के लोगों की संख्या 31 फीसदी तक पहुंच गई है। चुनाव विशेषज्ञों के अनुसार यह 31 प्रतिशत मतदाता ही सबसे ज्यादा सक्रिय होता है। पूर्व चुनाव आयुक्त वाई.एस.कुरैशी के अनुसार 2012 की चुनाव सूची में करीब 1.11 करोड़ ऐसे नए मतदाता जुड़े थे जिनकी उम्र 18–19 साल के बीच थी। इस हिसाब से पिछले 2009 के लोकसभा चुनाव से 2014 तक करीब साढ़े पांच करोड़ ऐसे नए मतदाताओं के जुड़ने का अनुमान है। ❑

त्योहारों के सीजन पर नहीं मिलेगी कैश छूट

यदि आप इस साल दिवाली के मौके पर खरीदारी की योजना बना रहे हैं तो आपको झटका लग सकता है। रुपये में गिरावट और बढ़ती उत्पादन लागत की वजह से कंपनियां इस बार दिवाली पर ज्यादा कैश छूट देने की स्थिति में नहीं रहेगी। अकसर देखा गया है कि दशहरा और दिवाली के मौके पर घरेलू उपयोग का सामान बनाने वाली कंपनियों के लिए बेहतर माना जाता है। विशेषज्ञों के अनुसार त्यौहार के मौकों पर कंपनियों की कुल सालाना कारोबार का 30 प्रतिशत से अधिक हो जाता है और उपभोक्ताओं को भी छूट की विशेष पेशकश के साथ किफायदी दरों पर खरीदारी करने का मौका मिल जाता है। लेकिन इस बार ऐसा होने की उम्मीद कम ही लग रही है। ❑

नेतृत्व की कमी - रतन टाटा

देश के जाने माने उद्योगपति रतन टाटा ने एक बार फिर देश के मौजूदा नेतृत्व को कठघरे में खड़ा किया है। उन्होंने कहा कि भारत को लेकर दुनिया में भरोसा घट रहा है और मौजूदा हालात में देश में कोई व्यक्ति दिखाई नहीं दे रहा है जो आगे बढ़कर नेतृत्व करे। सरकार ने भी हमारा विश्वास डगमगा दिया है। साथ ही उन्होंने कहा योजनाएं बनाने से लेकर उन्हें अमल में लाने तक कई तरह के बदलाव हो जाते हैं और मशीनी में कोई तालमेल नहीं दिखाती। यह बात उन्होंने एक निजी चैनल को दिए एग साक्षात्कार में कही।

क्या फिर फूटेगा प्रोपर्टी बाजार. . .

प्रॉपर्टी बाजार की हालत एक बार फिर से नाजुक स्थिति की ओर जा रही है। मांग घट रही है, बिक्री कम हो रही है, कीमतों में सुधार आ रहा है और आरबीआई ने पहले से ज्यादा सख्ती कर दी है। बाजार विशेषज्ञों की राय दो दिशाओं में चल रही हैं। एक ओर कहा जा रहा है कि आरबीआई के नये सर्कुलर से घर खरीदने वालों को फायदा पहुंचने की बात कही जा रही है। वहीं, कुछ लोगों का कहना है कि बाजार और नाजुक हो चला है। पहले ही पैसों की तंगी से जूझ रहे डेवलपर्स को अब आरबीआई की सख्ती भी झेलनी पड़ रही है। आरबीआई के नये नियम के मुताबिक, बैंक अब कंस्ट्रक्शन की प्रोग्रेस के हिसाब से कर्ज की राशि जारी करेंगे। इसके अलावा, बिल्डर्स को तब तक ईएमआई का भुगतान देना पड़ेगा जब तक वह खरीदार को पोजेशन नहीं देते। इससे बैंकों की ओर बिल्डर्स पर कंस्ट्रक्शन को समय पर पूरा करने के लिए दबाव बनाया जाएगा। वैसे अधिकांश बिल्डर्स ने इसका स्वागत किया है लेकिन कुछ बिल्डर्स का कहना है कि इससे हमें नुकसान उठाना पड़ेगा। विशेषज्ञों के मुताबिक, इसका प्रभाव बिक्री पर कुछ समय के लिए ही दिखाई देखा। देखा जाए तो आज प्रॉपर्टी की मांग में भारी गिरावट आई है। एक रिपोर्ट के अनुसार पिछली तिमाही के मुकाबले मुंबई में प्रॉपर्टी की बिक्री 12 फीसदी, दिल्ली–एनसीआर में बिक्री 13 फीसदी, पुणे में 15 फीसदी गिरी है। परंतु बेंगलुरु में बिक्री में 25 फीसदी इजाफा हुआ है।❑

देश में विदेशी विश्वविद्यालायों को मिली अनुमति

संसद और आम जनता को किनारे रखते हुए मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने विदेशी विश्वविद्यालयों को भारत में अपने परिसर खोलने की अनुमति देने का फैसला किया है। मंत्रालय अब विदेशी विश्वविद्यालय और संस्थानों के लिए यूजीसी नियमों को अंतिम रूप दे रहा है। इन्हीं नियमों के जरिये विदेशी संस्थानों को प्रवेश दिलाया जा रहा है। अब केवल इस मामले में दो अन्य विभागों औद्योगिक नीति एवं संवर्धन व आर्थिक प्रभाग की औपचारिक अनुमति का इंतजार है। इस विधेयक पर विपक्ष और सत्तारूढ़ दल के कई सदस्यों ने भी विरोध जताया है।

मोदी पीएम प्रत्याशी हों तो ही भाजपा के साथ : बाबा रामदेव

प्रधानमंत्री पद का उम्मीदवार घोषित करने को लेकर भाजपा भले ही हड़बड़ी में न हो, लेकिन योगगुरु बाबा रामदेव ने गुजरात के मुख्यमंत्री नरेंद्र मोदी को पीएम प्रत्याशी घोषित कर दिया है। बाबा रामदेव ने कहा कि देश जिन परिस्थितियों से गुजर रहा है, ऐसे में कमान किसी महानायक के हाथों में होनी चाहिए। देश को भ्रष्टाचार, महंगाई और गरीबी से केवल मोदी ही निकाल सकते हैं। आज मोदी ने गुजरात में सुशासन की मिसाल कायम की है। पिछले 10 वर्षो में गुजरात में कोई दंगा नहीं होने दिया। गुजरात के हर क्षेत्र में विकास दिखता है। समूचा देश मोदी को प्रधानमंत्री के रूप में देखना चाहता है। उन्होंने कहा कि उन्होंने देश की वर्तमान परिस्थितियों को लेकर मोदी से बातचीत की है। कालाधन, भ्रष्टाचार, महंगाई जैसे मुद्दों पर उनकी बात से मोदी सहमत हैं। केन्द्र सरकार को आड़े हाथों लेते हुए बाबा रामदेव ने कहा कि अंग्रेजों ने जिस तरह से यहां लूट मचाई थी, वही खेल कांग्रेस के शासनकाल में देखने को मिल रहा है। यह बात उन्होंने वीपी हाऊस आयोजित संवाददाता सम्मेलन में कही। ❑

जी-20 सम्मेलन

भारत जैसे उभरते हुए विकासशील देशों के लिए इस बार का जी–20 सम्मेलन कुछ ज्यादा ही महत्वपूर्ण था। कुछ हद तक चीन को छोड़कर इनमें से ज्यादातर की हालत खराब है। अमेरिका द्वारा अचानक सख्त मौद्रिक नीति अपना लिए जाने के डर ने पहले ही इन्हें बेदम कर रखा था, इधर सीरिया पर हमले की आशंका ने लगभग इनका भट्ठा ही बिठा दिया। उम्मीद थी कि मास्को में इन समस्याओं का कुछ समाधान निकलेगा। लेकिन दुर्भाग्यवश जी–20 भी अब संयुक्त राष्ट्र की तरह जुबानी जमाखर्च का अड्डा बनता जा रहा है।

जी–20 सम्मेलन के मूड पर नजर डालें तो अभी के माहौल में कोई भी देश कच्चे तेल जैसे महत्वपूर्ण संसाधन पर इतना बड़ा जोखिम खड़ा करने के पक्ष में नहीं है। इसके अमेरिका बनाम रूस जैसे घोषित तनाव का रूप ले लेने से जुड़े खतरों की तो कोई कल्पना भी नहीं कर पा रहा है, हालांकि इसका असर सम्मेलन पर लगातार देखा गया। जी–20 इस समय संसार का सबसे कारगर आर्थिक समूह है और दुनिया को वित्तीय संकट के अतल गर्त में डूब जाने से इसने कम से कम अब तक तो बचा ही लिया है। लेकिन ध्यान रहे, संकट अभी समाप्त नहीं हुआ है। और अमेरिका जैसा ताकतवर मुल्क अगर जी–20 के आम मिजाज को भांपने में कोई चूक करता है तो संकट की वापसी के लिए सबसे पहले उसे ही तैयार होना होगा। ❑

बढ़ते शहर और दम तोड़ती भाषाएं

भाषा के बारे में एक कहावत है– भाषा बहता नीर। यानी भाषाएं कुछ नया ग्रहण करती रहती हैं। लेकिन उदारीकरण के दौर की नई संस्कृति में अपने मूल से विचलन के बाद नया अपनाने की प्रक्रिया बढ़ तो रही है, पर पुराने का साथ छूट रहा है. . .ऐसे में आखिर क्या किया जाए? विशेषज्ञ कहते हैं कि शहरीकरण को बेशक रोका नहीं जा सकता, लेकिन शहरों में आकर बसने वाले छोटे भाषायी परिवारों और समुदायों की भाषाओं को जिंदा रखने के लिए माहौल जरूर मुहैया कराया जाना चाहिए।

■ उमेश चतुर्वेदी

औद्योगिक क्रांतियों और विकास के लिए हो रहे बदलावों को चाहे कितना भी जायज ठहराया जाए, सच यह है कि ऐसी क्रांतियां और बदलाव सांस्कृतिक तब्दीली भी लाते हैं, जिसका सबसे ज्यादा असर भाषाओं, बोलियों और प्रभावित होने वाले समुदायों की शब्द संपदा पर पड़ता है। इस सिलसिले में अब तक मुकम्मल अध्ययन नहीं हुए। भाषा और बोलियों की परिभाषा में उलझे रहने वाले विश्वविद्यालयों के भाषा विज्ञान विभागों को यह कभी मौका ही नहीं मिला कि देश की जातीय संस्कृति की प्रतीक रही भाषाओं और बोलियों का हश्र जाना जाए। शुक्र है कि अपने सीमित संसाधनों में बड़ोदरा के भाषा शोध और प्रकाशन केंद्र ने तीन साल तक चले एक अध्ययन के बाद नतीजा निकाला है कि देश में 1961 के बाद कम से कम बीस फीसदी भाषाएं या तो मर गईं या लुप्त हो गईं हैं।

अब सवाल उठता है कि आखिर 1961 को ही पैमाना क्यों बनाया गया, तो इसकी बड़ी वजह है कि इसी साल तक जनगणना का एक आधार भाषाएं भी रहीं। उस वक्त के सरकारी मानकों के मुताबिक भाषा विज्ञान के ठीक उलट उस बोली को भाषा माना गया, जिसे बोलने वालों की संख्या दस हजार या उससे ज्यादा थी। उस जनगणना के मुताबिक, देश में करीब 1,100 भाषाएं थीं। 1971 से लेकर अब तक जितनी भी बार जनगणना हुई है, भाषाई आधार गायब कर दिए गए। बहरहाल, भाषा शोध और प्रकाशन केंद्र ने अपने अध्ययन नतीजों में पाया है कि 1,100 में से इन दिनों सिर्फ 780 भाषाएं ही जिंदा हैं। उनमें सबसे ज्यादा मछुआरों और बंजारों के करीब 190 समुदाओं की भाषाएं और उनकी शब्द संपदा पूरी तरह खत्म हो चुकी है।

आखिर ये भाषाएं क्यों मरीं...इस सवाल का जवाब तलाशते वक्त नृतत्वशास्त्र के सिद्धांतों की तरफ देखना होगा। माना जा रहा है कि विकास का पैमाना बन चुका महानगरीकरण संस्कृतियों का श्मशानगृह भी साबित हो रहा है। महानगरीकरण ने बंजारों को भी एक जगह ठहरने और उनके पारंपरिक व्यवसायों के बजाय मौजूदा जिंदगी के फलसफे पर जिंदगी गुजारने को मजबूर किया है। बेशक इससे कुछ जगहों पर उनकी माली और सामाजिक हैसियत बेहतर हुई होगी, लेकिन इस बेहतरी ने एक संस्कृति को ही खत्म कर दिया और उसके साथ कई

1971 से लेकर अब तक जितनी भी बार जनगणना हुई है, भाषाई आधार गायब कर दिए गए। बहरहाल, भाषा शोध और प्रकाशन केंद्र ने अपने अध्ययन नतीजों में पाया है कि 1,100 में से इन दिनों सिर्फ 780 भाषाएं ही जिंदा हैं। उनमें सबसे ज्यादा मछुआरों और बंजारों के करीब 190 समुदाओं की भाषाएं और उनकी शब्द संपदा पूरी तरह खत्म हो चुकी है।

भाषाएं भी खत्म हो गईं। यही हालत मछुआरों से जुड़े समुदायों की भी है।

असल में, शहरीकरण व्यक्ति को अपने मूल से काटता है। इस जद्दोजहद में मूल और उस खास विशेष शहर की संस्कृति के बीच मुठभेड़ होती है और एक हद तक उसमें नई संस्कृति विजयी होती है और एक नई संस्कृति का जन्म होता है। लेकिन इस पूरी प्रक्रिया में मूल का बहुत कुछ पीछे छूट जाता है।

ऐसा नहीं कि आज जो भाषाएं जिंदा हैं, उनकी शब्द संपदा वैसी ही है, जैसी तीस–चालीस साल पहले थी। जिस तरह हिंदीकरण देसी भाषाओं पर और हिंदी समेत सभी भाषाओं पर अंग्रेजी हावी हुई है, उसका हश्र यह हुआ है कि देसी भाषाओं और उनमें से भी खास साहित्यिक दर्जा हासिल नहीं कर पाईं भोजपुरी, मगही और अवधी जैसी बोलियों–भाषाओं के कई सारे पारंपरिक शब्द लुप्त हुए हैं। इस प्रक्रिया में हिंदी के भी ढेरों शब्द अब शब्दकोशों तक ही सीमित रह गए हैं। यानी समस्या सिर्फ भाषाओं के खत्म होने का ही नहीं, बल्कि मौजूदा बोलियों–भाषाओं की घटती शब्द संपदा का भी है।

भाषा के बारे में एक कहावत है– भाषा बहता नीर। यानी भाषाएं कुछ नया ग्रहण करती रहती हैं। लेकिन उदारीकरण के दौर की नई संस्कृति में अपने मूल से विचलन के बाद नया अपनाने की प्रक्रिया बढ़ तो रही है, पर पुराने का साथ छूट रहा है। सबसे बड़ी बात यह है कि यह समस्या छोटे भाषिक परिवारों और समुदायों के साथ ज्यादा हो रही है। उन भाषाओं को भी कठिनाई है, जिन्होंने अभी तक कोई मानक लिपि अख्तियार नहीं की है। ऐसे में आखिर क्या किया जाए? विशेषज्ञ कहते हैं कि शहरीकरण को बेशक रोका नहीं जा सकता, लेकिन शहरों में आकर बसने वाले छोटे भाषायी परिवारों और समुदायों की भाषाओं को जिंदा रखने के लिए माहौल जरूर मुहैया कराया जाना चाहिए। अंडमान के जावरा समुदाय को बचाने के लिए कदम बढ़ा चुकी सरकार क्या इस दिशा में भी आगे बढ़ सकती है? शहरीकरण भले ही विकास का पैमाना हो, पर यह भाषाओं का श्मशानगृह भी साबित हो रहा है। ❑

:: सदस्यता संबंधी सूचना ::

मान्यवर,,

स्वदेशी पत्रिका आज देश में चल रहे स्वदेशी आंदोलनों का स्थापित प्रतीक बन चुकी है। पिछले कई वर्षों से स्वदेशी पत्रिका ने असंगत एवं एकतरफा वैश्वीकरण, जनविरोधी आर्थिक उदारीकरण के विरोध एवं वैकल्पिक और रचनात्मक स्वदेशी आंदोलन के पक्ष में एक सक्रिय प्रहरी के नाते हमेशा आपको जागरूक बनाया है एवं आपसे संवाद स्थापित किया है। विगत कालखंड में इन सभी मुद्दों पर हमें आप जैसे सजग पाठकों का अपेक्षित सहयोग भी मिलता रहा है और भविष्य में भी मिलेगा ऐसा, विश्वास है।

आपसे आग्रह है कि स्वदेशी पत्रिका की आपकी सदस्यता अवधि यदि समाप्त हो गई हो तो कृपया पिछले समय से आगामी वर्ष तक की राशि धनादेश (मनीआर्डर), चेक एवं मांग पत्र (डिमांड ड्राफ्ट) के माध्यम से शीघ्र भेजने की कृपा करें। पत्रिका के लिफाफे के उपर चिपकाए गए पते की प्रथम पंक्ति में सदस्यता अवधि अंकित है। आप अपनी सदस्यता राशि ''स्वदेशी पत्रिका'' के नाम पत्रिका के कार्यालय के पते पर भेज सकते हैं। सदस्यता अद्यतन न हो पाने की स्थिति में वित्तीय कारणों से पत्रिका आगे जारी रखना कठिन होगा।

सदस्यता शुल्क निम्न प्रकार है :–

स्वदेशी पत्रिका	वार्षिक	आजीवन
हिन्दी	150 रुपए	1500/– रुपए
अंग्रेजी	150 रुपए	1500/– रुपए

हमें आपका सहयोग स्वदेशी आंदोलन को राष्ट्रव्यापी एवं जनोन्मुखी बनाने में प्रमुख भूमिका निभाएगा। कृपया स्वदेशी पत्रिका स्वयं भी पढ़ें एवं अन्य को भी पढ़ने के लिए प्रेरित करें। पत्रिका के संबंध में अपना निष्पक्ष विचार हमें अवश्य भेजें।

आप सीधे बैंक ऑफ इंडिया, खाता नं. 602510110002740 IFSC : BKID 0006025 (Ramakrishnapuram) में जमा करवा सकते हैं और उसकी रसीद और अपना पता आप कार्यालय में अवश्य भेजे।

स्वदेशी पत्रिका कार्यालय, 'धर्मक्षेत्र' शिव शक्ति मंदिर, सैक्टर–8, रामकृष्णपुरम्, नई दिल्ली–22

विनाश नहीं - विकास का कारण हो बाँध

जो बांध पहले से बन चुके हैं, उनसे सुरक्षा का किस तरह खतरा उत्पन्न हो सकता है, इसकी न केवल नियमित जांच होनी चाहिए अपितु इस जांच को आसपास के लोगों तक पंहुचाना भी उतना ही जरूरी है। यदि कोई बांध दुर्घटना होती है तो उस समय लोगों को क्या करना है, इसकी सूचना किस तरह तेजी से पंहुचानी है और कहां लोगों को शरण लेनी है, इसकी जानकारी पहले से उपलब्ध हो तो बहुत से अमूल्य जीवन बचाए जा सकते हैं।

■ भारत डोगरा

जहां एक ओर विश्व में बांध निर्माण का कार्य तेजी से आगे बढ़ रहा है, वहीं दूसरी ओर इनकी सुरक्षा के प्रति चिंता भी बढ़ रही है। चिंता स्वाभाविक है, क्योंकि एक बड़ी बांध दुर्घटना अनगिनत लोगों की मौत का कारण हो सकती है। इस मामले में वैश्विक स्तर की दुर्घटनाओं की बात करें तो सबसे दर्दनाक दुर्घटना चीन में अगस्त 1975 में घटी थी जिसमें लगभग दो लाख लोगों के मारे जाने का अनुमान था। उस समय चीन की अनेक प्रतिकूल घटनाओं के समाचार वहां की सरकार सार्वजनिक होने से रोक देती थी। बाद में विभिन्न विवरणों को जोड़कर पता चला कि यह कितना बड़ा हादसा था। इस दुर्घटना में भीषण तूफान के बाद 7 अगस्त को हेनान प्रान्त में यांगत्जे नदी की सहायक नदी हुआई पर बना बानक्याओ टूट गया और इसके जलाशय का 50 करोड़ क्यूबिक मीटर पानी 500 किमी. प्रति घंटे की रफ्तार से नीचे की ओर बह निकला और इसने देखते–देखते बड़ी संख्या में ग्रामीण व शहरी आबादियों को लील लिया। इस त्रासदी में शिमनतान व कुछ छोटे बांध भी टूट गए। जहां बहुत से लोग इस पल्रय में तुरंत मारे गए, वहां बाढ़ के पानी में देर तक फंसे रहने के कारण अनेक लोग बीमारी और भूख से मारे गए।

इस बारे में उपलब्ध विभिन्न जानकारियां जुटाकर मानवाधिकार संगठन ह्यूमेन राइट्स वाच ने बाद में अनुमान लगाया कि इसके टूटने व हादसे में 85000 व्यक्ति तुरंत बाढ़ के बहाव में मारे गए व बाद में बीमारी, भूख व अभाव से 145000 लोग मारे गए। इस तरह इस हादसे में कुल 230000 मौतें हुई। इटली में बनाया गया 261 मीटर ऊंचा वायंट बांध भी एक गंभीर हादसे से जुड़ा है। 1960 में जब इसके जलाशय में पानी भरा गया तभी भूकंपीय झटके रिकार्ड किए गए व पर्वतों की अस्थिर चट्टानें जलाशय की ओर खिसकने लगीं। 1963 में अधिक वर्षा होने पर 60 भूकंपीय झटके दर्ज किए गए व चट्टानों की सक्रियता बढ़ती गई। 9 अक्टूबर को लगभग 35 करोड़ क्यूसेक मीटर चट्टने व मलबा ऊपर के टॉक पर्वत से जलाशय में गिरा। इससे जलाशय में जो प्रलयकारी जलधारा निकली, उसने मिनटों में नीचे लांगरौन कस्बे को मटियामेट कर दिया। यहां लगभग सब लोग मारे

भारत में निर्मित विवादास्पद टिहरी बांध परियोजना के जलाशय में भी यह समस्या देखी गई है इसके इर्द–गिर्द ऊपरी पहाड़ों की कई चट्टानें इसी ओर खिसक रही हैं। कई बार तो अपेक्षाकृत छोटे बांधों के टूटने से ही इतना नुकसान हुआ कि बांधों के निर्माण पर ही प्रश्नचिन्ह लग गया। अमेरिका में पेनसिलवेनिया में मात्र 23 मीटर ऊंचे जान्सटाउन बांध टूटने से 2 से 10 हजार के बीच लोग मारे गए।

गए। कुछ गांव भी प्रभावित हुए। इस हादसे में लगभग 2600 लोग मारे गए।

भारत में निर्मित विवादास्पद टिहरी बांध परियोजना के जलाशय में भी यह समस्या देखी गई है इसके इर्द–गिर्द ऊपरी पहाड़ों की कई चट्टानें इसी ओर खिसक रही हैं। कई बार तो अपेक्षाकृत छोटे बांधों के टूटने से ही इतना नुकसान हुआ कि बांधों के निर्माण पर ही प्रश्नचिन्ह लग गया। अमेरिका में पेनसिलवेनिया में मात्र 23 मीटर ऊंचे जान्सटाउन बांध टूटने से 2 से 10 हजार के बीच लोग मारे गए। गुजरात में मच्छू बांध टूटने से कई सौ लोग मारे गए व मोरवी शहर तथा अनेक गांव नष्ट हो गए। भारत में अब तक टूटे कुछ अन्य बांध हैं– कद्दम, चिकाहोल, आरन, पांशत (पुणो के पास) व खड़कवासला। इसके अलावा भाखड़ा बांध दो बार ओवरटापिंग के कारण टूटने से बचा। हीराकुंड, बरना, बारगी, फरक्का, पांचना, मुल्लरपरियर भी सुरक्षा का दृष्टि से संवेदनशील हैं।

बांध के रूप में कृत्रिम जलाशयों में बड़ी मात्रा में पानी की मौजूदगी के कारण अनेक जगहों पर भूकंप के झटके महसूस किए गए हैं। इसे जलाशय से उत्पन्न भूकम्पीयता कहा जाता है। एक विशेषज्ञ डॉ. हर्ष गुप्त ने अपने अध्ययन में बताया था कि जिन जलाशयों की ऊंचाई 150 से 250 मीटर थी, उनमें से 30 प्रतिशत अथवा लगभग एक–तिहाई जलाशयों में भूकंपीयता देखी गई है। 90 से 120 मीटर ऊंचे जलाशयों में से यह 6 प्रतिशत में देखी गई है। दरअसल, जब बड़ी मात्रा में एकत्र जल का भार अचानक ऐसी भूमि पर पड़ता है, जो पहले इसकी अभ्यस्त नहीं थी, तो इससे कुछ भूगर्भीय बदलाव आरंभ होते हैं। जब यह पानी रिस कर पृथ्वी के भीतरी हिस्से में पहुंचता है तो इससे भी कुछ भूगर्भीय हलचलें आरंभ होती हैं जो कई बार विनाशकारी भूकम्प का कारण बनती हैं।

नए बांधों के लिए अब जो स्थल खोजे जा रहे हैं वह पहले की अपेक्षा कम उपयुक्त हैं। केवल विशेषज्ञों को सलाहकार के रूप में बुला लेने से समस्या हल नहीं होती है। इन स्थितियों के मद्देनजर न केवल सुरक्षा की दृष्टि से शुरुआत से ही विवादों में रही बड़ी बांध की परियोजनाओं (जैसे टिहरी परियोजना) के रख–रखाय आगे बहुत सावधानी बरती जाए और बड़े बांधों के निर्माण के विषय में पुनर्विचार किया जाए।

महाराष्ट्र में कोयनानगर का क्षेत्र पहले भूकंपीयता से मुक्त था, पर कोयना जलाशय में पानी भरने के बाद यहां भीषण भूकम्प आया जिसमें 200 व्यक्तियों की मृत्यु हुई, 1500 व्यक्ति घायल हुए और कोयनानगर के 80 प्रतिशत मकान या तो पूरी तरह नष्ट हो गए या रहने योग्य नहीं रह गए। इस भूकम्प के झटके लगभग 450 किलोमीटर दूर स्थित मुंबई में भी महसूस किए गए। बड़े बांध बनाने की प्रक्रिया में कुछ जगहों पर, विशेषकर जहां भू–स्थिति पहले से अस्थिर, कमजोर व संवेदनशील है, विस्फोटकों का अत्यधिक इस्तेमाल होता है। इस कारण वहां भू–कटाव, भूस्खलन की आशंकाएं बहुत बढ़ जाती हैं। प्राकृतिक भूकंप आए या जलाशय से उत्पन्न भूकम्पीयता से जुड़ा भूकम्प, पहले से कच्चे हो गए क्षेत्र में नुकसान कहीं ज्यादा होता है।

उदाहरण के लिए, गढ़वाल के उत्तरकाशी क्षेत्र में अक्टूबर 1991 में जो भूकंप आया, उसमें सर्वाधिक मौतें उन गांवों में हुई जो मनेरी भाली बांध निर्माण के दौरान हुए विस्फोटों से बहुत कमजोर हो चुके थे। भविष्य में बांध टूटने या विफल होने का खतरा और बढ़ जाएगा, क्योंकि सबसे उपयुक्त स्थानों पर तो बांध बन ही चुके हैं।

नए बांधों के लिए अब जो स्थल खोजे जा रहे हैं वह पहले की अपेक्षा कम उपयुक्त हैं। केवल विशेषज्ञों को सलाहकार के रूप में बुला लेने से समस्या हल नहीं होती है। इन स्थितियों के मद्देनजर न केवल सुरक्षा की दृष्टि से शुरुआत से ही विवादों में रही बड़ी बांध की परियोजनाओं (जैसे टिहरी परियोजना) के रख–रखाय आगे बहुत सावधानी बरती जाए और बड़े बांधों के निर्माण के विषय में पुनर्विचार किया जाए। साथ ही यह भी कि काम कर रही सभी बांध परियोजनाओं के सुरक्षा पक्ष पर पहले से अधिक ध्यान दिया जाए। जो बांध पहले से बन चुके हैं, उनसे सुरक्षा का किस तरह खतरा उत्पन्न हो सकता है, इसकी न केवल नियमित जांच होनी चाहिए अपितु इस जांच को आसपास के लोगों तक पंहुचाना भी उतना ही जरूरी है। यदि कोई बांध दुर्घटना होती है तो उस समय लोगों को क्या करना है, इसकी सूचना किस तरह तेजी से पंहुचानी है और कहां लोगों को शरण लेनी है, इसकी जानकारी पहले से उपलब्ध हो तो बहुत से अमूल्य जीवन बचाए जा सकते हैं। ❑

स्वतंत्रता से वंचित क्यों..?

गाँव में 59 प्रतिशत पुरुषों के मुकाबले 54 प्रतिशत महिलाए कृषि कार्यों में लगी है। राष्ट्रीय आय में उनका योगदान 70 प्रतिशत है, राष्ट्र का दो तिहाई उत्पादन महिलाए करती है, परंतु वे केवल 10 प्रतिशत सम्पत्ति की अधिकारिणी है। महिला स्वतंत्रता का अर्थ महिलाओं में जागृत चेतना से है। जो अपने लिए स्वयं चुनाव करे, अपने निर्णय स्वयं लें, वही स्वतंत्र है। संविधान में महिला को समान अधिकार दिए है परन्तु परिवार एवं समाज ने महिलाओं के अधिकारों को छीना है। जो अपने विकास के समान अधिकारों व अवसरों को प्राप्त कर ले, वही स्वतंत्रता से सही अर्थों में वंचित नहीं रहेगी।

■ रेणु पुराणिक

हमारे देश का हर एक व्यक्ति स्वतंत्र है। परंतु देश की आधी जनसंख्या अब भी कई मायने में गुलामी का दंश झेल रही है। वह कई बार अपनी जिन्दगी से जुड़े अहम् निर्णय स्वयं की इच्छा से नहीं ले पाते हैं। आखिर कब मिलेगी उसे स्वतंत्रता?

वैदिक काल में महिलाओं की प्रस्थिति बहुत उत्तम थी। इस काल में महिलाएं अपने समस्त अधिकारों का प्रयोग संपूर्ण रूप से करती थी। वैदिक काल में महिलाए शैक्षणिक, राजनैतिक, सामाजिक एवं धार्मिक कार्यों में बराबरी से भागीदार रहती थी। महिला को मातृरूप में पूजनीय माना जाता था।

उत्तर–वैदिक काल से महिलाओं की स्थिति पतनोन्मुख होने लगी थी। महाभारत काल में कन्या जन्म को अशुभ मानने का संकेत मिलता है। (महाभारत 5/3/7) रामायण काल में सीता का जीवन चरित्र दुःखों से भरा हुआ प्रतीत होता था।

कालांतर में पुरुषों में यह धारणा पनपने लगी कि महिलाए उनकी व्यक्गित संपत्ति है एवं वे उन्हें अपने मान–सम्मान से जोड़कर देखने लगे। महिला को भोग विलास की वस्तु समझा जाने लगा। भारत में आरंभ से ही विदेशियों का आक्रमण होता रहा है परंतु विशेषतः मुसलमानों के आक्रमण के बाद महिलाओं पर अनेक प्रकार के प्रतिबंध थोपे गए। पर्दाप्रथा, बाल–विवाह, सती प्रथा, शिक्षा पर प्रतिबंध आदि कुरीतियाँ तेजी से बढ़ने लगी। धीरे–धीरे महिलाओं की स्थितियों का ह्रास होता गया। महिलाओं की समस्त सुविधाओं न्यूनतम होती गई और महिलाए कर्त्तव्य और अधिकारों की भूल–भूलैया में फंसकर रह गई। कर्त्तव्य और अधिकारों का निर्णय लेने में असमर्थ होने लगी और हर बात पर पुरुषों पर निर्भर रहने लगी।

जिस पुरुष प्रधान समाज ने महिला को सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण कहा और पूजा उसी पुरुष के सन्मुख महिला के प्रति करुणा निस्तृत हुई और उसने महिला का अबला जीवन एवं आँखों से बहते आंसू देखे। कही महिला वंदन हुआ और उसका क्रंदन हुआ। पुरुष प्रधान समज में साहित्य ने महिला को सबला कहा और उसे देहप्रेम की मूर्त्ति के रूप में निरूपित किया। महिला से समर्पण चाहा गया और दीवारों के भीतर ही उसे स्वर्ग दिखाया गया। महिला के प्रति निष्ठा प्रदर्शित करते हुए मर्यादाओं का प्रतिबंध लगा दिया।

ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाए तो भारतीय समाज बहुधा महिला स्वतंत्रता के विरूद्ध रहा है तथा इसी दृष्टिकोण के

रहते महिलाओं की स्थिति में सुधार नहीं हुआ। महात्मा गांधी ने एक बार कहा था कि हमारे समाज में महिलाओं को गुलामी की तरह जीना पड़ता है और उन्हें यह भी पता नहीं चलता कि वे गुलामों के जैसा जीवन जी रही है। इस स्थिति से उन्हें मुक्ति मिलनी चाहिए। महिलाए स्वयं भी ऐसा अनुभव करती है। महिलाओं से पूछा गया तो अलग–अलग उन्होंने बताया कि हमारे पास जुबान तो है लेकिन अपनी बात कह नहीं पाती। हमारे पास दिमाग तो है लेकिन अपनी दिशा नहीं सोच पाती। हमारे पास पैर तो है लेकिन अपनी राह पर चल नहीं पाती। सबकुछ दूसरों की धरोहर है।

आमतौर पर महिलाए कानूनी तौर पर मिली अपने पिता की संपत्ति को भाईयों के पक्ष में छोड़ देती है। क्यों? महिलाए बचपन में पिता और भाई, युवा होने पर पति और वृद्ध होने पर पुत्र के संरक्षण में रहती आयी हैं – ऐसी मान्यता क्यों है? आज महिला स्वतंत्रता, महिला स्वाधीनता या महिला मुक्ति की आवाजें चारों तरफ गूँज रही है और सुनाई पड़ रही है।

महिला स्वतंत्रता को लेकर कई आंदोलन और संस्थाएं उठ खड़ी हुई है, यही पर यह सवाल उठता है कि महिला स्वतंत्रता की अवधारण क्या है? क्या यह आंदोलन पश्चिम के महिला मुक्ति आंदोलन की नकल है? भारतीय संविधान में महिलाओं को पुरुषों के समकक्ष स्वतंत्रता प्राप्त है। देश का न्याय महिला के पक्ष में है। महिलाएं विश्वविद्यालयों में उच्चशिक्षा प्राप्त कर रही हैं। आज महिलाएं न्यायाधीश हैं, कानूनविद है, शिक्षाविद है, विज्ञान और तकनीकि क्षेत्रों में कार्यरत है। राजनीति, सामाजिक, आर्थिक आदि सभी क्षेत्रों में जाने के लिए वह स्वतंत्र है। इससे लगता है कि महिलाओं की जीवन धारा बदल गई है परंतु दृश्य के पीछे का यथार्थ अलग ही है। भारतीय संविधान में दी गई स्वतंत्रता से अलग सामाजिक, पारिवारिक स्तर पर क्या महिलाओं के लिए स्वतंत्रता की कोई अवधारणा है?

ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाए तो भारतीय समाज बहुधा महिला स्वतंत्रता के विरूद्ध रहा है तथा इसी दृष्टिकोण के रहते महिलाओं की स्थिति में सुधार नहीं हुआ। महात्मा गांधी ने एक बार कहा था कि हमारे समाज में महिलाओं को गुलामी की तरह जीना पड़ता है और उन्हें यह भी पता नहीं चलता कि वे गुलामों के जैसा जीवन जी रही है। इस स्थिति से उन्हें मुक्ति मिलनी चाहिए।

देश का न्याय महिला के पक्ष में है। महिलाएं विश्वविद्यालयों में उच्चशिक्षा प्राप्त कर रही हैं। आज महिलाएं न्यायाधीश हैं, कानूनविद है, शिक्षाविद है, विज्ञान और तकनीकि क्षेत्रों में कार्यरत है। राजनीति, सामाजिक, आर्थिक आदि सभी क्षेत्रों में जाने के लिए वह स्वतंत्र है। इससे लगता है कि महिलाओं की जीवन धारा बदल गई है परंतु दृश्य के पीछे का यथार्थ अलग ही है।

भौतिकवादी जीवन दृष्टि, उपभोक्तावादी संस्कृति और बढ़ती हिंसा ने महिला स्वतंत्रका के सन्मुख कई प्रश्नचिन्ह लगा दिए है। समाज में आज भी यह विचारधारा विद्यमान है कि महिला जड़ है, उसे स्वतंत्रता नहीं दी जा सकती। उसकी स्वाधीनता, समानता और उत्थान पर विचार तो करते हैं। एक छोटा–सा वर्ग महिलाओं में ऊँची शिक्षा प्राप्त आर्थिक रूप से स्वावलंबी भी हुआ है। लेकिन क्या सभी मायने में ये आत्मनिर्भर महिलाएं स्वतंत्र है? क्या शिक्षित महिलाए स्वतंत्र हैं? क्या शिक्षित महिलाए स्वतंत्र हैं? इन सवालों पर विचार करना अनिवार्य है।

महिलाओं की आर्थिक स्वतंत्रता के पीछे शिक्षा, पश्चिमी प्रभाव, शहरीकरण, संयुक्त परिवारों का विघटन, बढ़ती महंगाई तथा आर्थिक संकट जैसे अनेक कारण हैं। महिलाओं की क्षमता का अंदाज लगाना है तो असंगठित क्षेत्रों, लघु उद्योगों, गृह उद्योगों आदि में काम कर रही 93 प्रतिशत महिलाओं को देखना होगा। गाँव में 59 प्रतिशत पुरुषों के मुकाबले 54 प्रतिशत महिलाए कृषि कार्यों में लगी है। राष्ट्रीय आय में उनका योगदान 70 प्रतिशत है, राष्ट्र का दो तिहाई उत्पादन महिलाए करती है, परंतु वे केवल 10 प्रतिशत सम्पत्ति की अधिकारिणी है।

महिला स्वतंत्रता का अर्थ महिलाओं में जागृत चेतना से है। जो अपने लिए स्वयं चुनाव करे, अपने निर्णय स्वयं लें, वही स्वतंत्र है। संविधान में महिला को समान अधिकार दिए है परन्तु परिवार एवं समाज ने महिलाओं के अधिकारों को छीना है। जो अपने विकास के समान अधिकारों व अवसरों को प्राप्त कर ले, वही स्वतंत्रता से सही अर्थों में वंचित नहीं रहेगी। ❑

भारतीय अर्थव्यवस्था का दर्पण

■ विद्यानन्द आचार्य

भारतीय अर्थव्यवस्था के बारे में जब भी कभी चर्चा या बहस होती है तो अर्थशास्त्रियों द्वारा यह साबित करने का प्रयास किया जाता है कि भारतीय अर्थव्यवस्था का कालखण्ड सही मायने 1991 एवं उसके बाद अपनाए गए आर्थिक उदारीकरण के बाद ही शुरू हुआ। इस संदर्भ में भारतीय अर्थव्यवस्था पर अनेकों पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। लेकिन हाल ही में भारतीय अर्थव्यवस्था पर एक पुस्तक प्रकाशित होकर आयी है। जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय (जेएनयू) के ख्याति प्राप्त विद्वान एवं भारत में कालाधन विषय पर प्रामाणिक पुस्तक लिखने वाले प्रोफेसर अरुण कुमार की हाल ही में प्रकाशित पुस्तक ''इंडियन इकॉनोमी सिंस इंडिपेडेंस : परसिस्टिंग कोलोनियल डिसरप्शन'' में आजादी के बाद से अब तक के भारतीय अर्थव्यवस्था का समग्र वर्णन तथ्यों एवं आंकड़ों के आधार पर किया है। इस पुस्तक में अर्थव्यवस्था के सभी सकारात्मक एवं नकारात्मक पहलुओं का भी जिक्र विस्तार से किया गया है।

अर्थव्यवस्था पर जितनी भी अन्य पुस्तकें आयी है उनमें भारतीय अर्थव्यवस्था के 1947 से आगे नियामक तथ्यों पर प्रकाश डालने का प्रयास नहीं किया गया है। इस मायने में यह पुस्तक अतीत के उन कालखंडों को बाहर लाने का सफल प्रयास किया है जिसके बारे में लोगों को जानकारी नहीं है। लेखक का यह प्रयास एक ओर जहाँ पुस्तक को व्यापक आयाम प्रदान करता है वहीं दूसरी ओर आज के युवा अध्येताओं के लिए तथ्यपरक सामग्री भी प्रस्तुत करता है।

पुस्तक के महत्व को रेखांकित करने के लिए पुस्तक के लोकार्पण समारोह में विभिन्न वक्ताओं द्वारा व्यक्त विचार उल्लेखनीय है। पुस्तक का लोकार्पण समारोह में विचार व्यक्त करते हुए विद्वानों के समूह ने स्पष्ट रूप से पुस्तक की विशिष्टताओं का उल्लेख करते हुए कहा कि आज जनमानस में अर्थव्यवस्था को लेकर जो निराशा व्याप्त है उसे पुस्तक में गंभीरता से उल्लेख किया गया है। सही मायने में कहें तो पूरे देश के जनमानस में एक गंभीर प्रश्न आज भी एक गंभीर सवाल है कि भारत की अर्थव्यवस्था दयनीय क्यों बनी हुई है? प्रोफेसर अरुण कुमार ने अपनी पुस्तक में इस कठिन प्रश्न का उत्तर विस्तार से दिया गया है। बकौल अरुण कुमार ''यदि आप वर्तमान में व्याप्त आर्थिक विसंगतियों का उत्तर खोजना चाहते हैं तो आपको देश के प्राचीन इतिहास को जानना खासकर आजादी के बाद अपनायी गई आर्थिक नीतियों को समझना आवश्यक होगा। उन्होंने कहा कि वर्तमान विसंगतियों से निकलने का एक ही रास्ता है कि हमें ज्ञान के घरेलू स्रोतों की ओर लौटना होगा एवं एक विकास के उचित प्रारूप को अपनाना होगा। इस मायने में पुस्तक आज के अर्थशास्त्रियों, छात्रों में व्याप्त इन धारणाओं को ध्वस्त करने में कामयाब रही है कि भारतीय अर्थव्यवस्था का कालखंड 1991 से नहीं शुरू होता है। आज के युवाओं को तो 1950 के दशक एवं उसके बाद अपनायी गई आर्थिक नीतियों की सही जानकारी भी नहीं है। पुस्तक में लेखक ने स्पष्ट रूप से कहा है कि हमें अपनी समस्याओं को भारतीय परिप्रेक्ष्य में ही देखना होगा। किसी एक देश की नीति दूसरे देश में सफल नहीं हो सकती है, क्योंकि सबकी समस्याएं एवं भौगोलिक हालात अलग–अलग होते हैं। इसलिए भरत को मौजूदा आर्थिक संकट से पार पाने के लिए भारतीय हितों वाली नीतियों को लागू करना चाहिए।

वर्तमान में अर्थव्यवस्था की जो दशा है उसकी भविष्यवाणी पुस्तक में पहले ही बयाँ की जा चुकी है। अर्थव्यवस्था की गति मंद पड़ने, उच्च मुद्रास्फीति की दर एवं राजस्व घाटे में वृद्धि से स्थिति नियंत्रण से बाहर हो जाएगी। इसके कारण दुनिया में भारत की साख गिरेगा। इन बातों का उल्लेख पुस्तक में किया गया

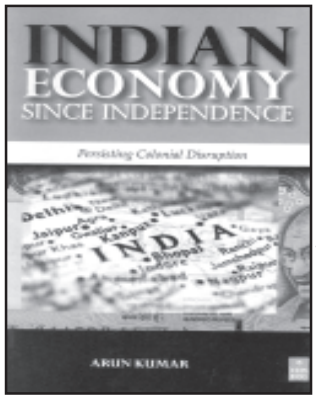

किसी भी देश के विकास में नेतृत्व की भूमिका अहम होती है। इसका असर संस्थाओं और समाज पर पड़ता है। आज देश में नेतृत्व की कमजोरी हर ओर दिखायी देती है। भारत में नेतृत्व की कमजोरी की जड़े औपनिवेशिक शासन से जुड़ी हुई है और यही वजह है कि आजादी के बाद नेतृत्व की गुणवत्ता में तेजी से गिरावट आयी है। मैकाले की पद्धति अपनाकर ब्रिटिश शासकों ने शासक वर्ग और आम लोगों के बीच दूरी बनाने का काम किया। गाँधी जी ने नीचे से विकास की जो बात कहीं थी वह राष्ट्रीय आंदोलन में कहीं दब गई। वर्तमान विकास अवधारणा पश्चिम से नकल की गई है। इससे असमानता बढ़ी और कालेधन की अर्थव्यवस्था का तीव्र विकास हुआ। कालेधन की अर्थव्यवस्था जीडीपी का 50 फीसदी हो गया है।

– प्रोफेसर अरुण कुमार द्वारा लिखी पुस्तक से

है। रुपए के गिरते स्तर से तो लगता है कि जो अनुमान प्रो. अरुण कुमार ने अपनी पुस्तक में बताए हैं वह सही साबित होने जा रहा है। दुर्भाग्यवश इन चुनौतियों का समाधान हेतु देश के आर्थिक विशेषज्ञ आत्म–मूल्यांकन के बजाए विदेशों से समाधान का बाट जोह रहे हैं।

पुस्तक में अंग्रेजी शासनकाल से चली आ रही मैकाले की शिक्षा नीति की भी कड़ी आलोचना की गई है। आजादी के बाद आधुनिकता के नाम पर मैकाले शिक्षा नीति को भी बिना सोचे–समझे आगे बढ़ाया गया। उस समय अंग्रेजी पढ़े–लिखे संपन्न वर्ग शिक्षा हासिल कर आगे बढ़े और गरीब पैसे के अभाव में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्राप्त नहीं कर सके। यही संपन्न वर्ग अंग्रेजी के जानकार होने के कारण राज व्यवस्था एवं शासन व्यवस्था पर हावी रहें। इन लोगों ने कभी भी भारत की आवश्यकता एवं स्थानिकता के अनुकूल नीतियाँ नहीं बनाई। शिक्षा व्यवस्था अंग्रेजीपरस्त होकर रह गई। शोध एवं विकास का स्थान आज की शिक्षा में कहीं भी दिखायी नहीं देता है। हम बुनियादी समझ विकसित नहीं कर पाए। परिणामस्वरूप समाज का बुनियादी ढांचा बिखर गया।

भारतीय लोकतांत्रिक व्यवस्था पर भी पुस्तक में प्रश्न खड़े किए गए हैं। इसी शिक्षा व्यवस्था का परिणाम हुआ कि भारतीय लोकतांत्रिक व्यवस्था में शुरू से ही अगुवाई करने वाले संभ्रांत वर्ग का वर्चस्व रहा एवं आम आदमी उसका हिस्सा नहीं बन पाया। फलतः यहां की लोकतांत्रिक व्यवस्था केन्द्रीकृत कर दी गई एवं जनभागिता उपेक्षित रही। यहां के शासक वर्ग पर देशहित के बजाय खुद का हित हावी होने लगा, भ्रष्टाचार बढ़ा और नेताओं, नौकरशाहों एवं अपराधियों के बीच गठजोर बनने लगा जो आज 'क्रोनी कैपिटलिज्म' के रूप में देश को डंस रहा है। देश जिन समस्याओं से आज जूझ रहा है उसके समाधान के रूप में पुस्तक के लेखक का मानना है कि हालात बदलने के लिए एक ही वैकल्पिक मॉडल की जरूरत है जिसमें उपभोक्तावाद न हो और भारत ही ऐसा देश है जो यह मॉडल दे सकता है।

चूँकि लेखक काला धन विषय के अच्छे जानकार हैं इसलिए पुस्तक में इस विषय पर भी विस्तार से चर्चा है। चूँकि काले धन की अर्थव्यवस्था देश के तीन प्रतिशत लोगों के हाथों में केन्द्रित है इसलिए समाज में असमानता बढ़ रही है और शेष लोग भी भ्रष्ट आचरण अपनाकर कालाधन बटोरना चाहते हैं। काला धन के कारण पूँजी का सही इस्तेमाल नहीं हो पाया है। पूँजी के समुचित निवेश न होने के कारण बेरोजगारी, महंगाई आदि को बढ़ावा मिलता है। यह स्थिति खतरनाक प्रवृत्ति को जन्म देती है जो अंततः सामाजिक कटुता एवं संघर्ष में तब्दील हो जाता है। पुस्तक के अनुसार ''आजादी के 66 साल बीत जाने के बाद भी हमारे देश में सर्वाधिक गरीब और निरक्षर लोग हैं। विकास की गलत नीतियों एवं नेतृत्व क्षमता में कमी के कारण भारत सर्वाधिक दूषित पर्यावरण वाले देशों में एक हो गया है और विदेशों से आयातित कचड़ों के लिए कूड़ाघर बन गया है।

पुस्तक में इस बात का गंभीरता से उल्लेख किया गया है कि किसी भी देश का सर्वांगीण विकास उसके नेतृत्व के ऊपर निर्भर करता है। यदि नेतृत्व योग्य एवं दूरदर्शी हुआ तो उसका असर उस देश की संस्थाओं पर पड़ता है। यदि नेतृत्व कमजोर हुआ तो देश पर इसका दूरगामी असर होता है। लेखक का उदाहरण वर्तमान व्यवस्था की ओर उंगुली उठाता है। इतना ही नहीं उन्होंने नेतृत्व की कमजोरी का उदाहरण औपनिवेशिक काल के बाद से ही रेखांकित किया है। आजादी के बाद इसकी गुणवत्ता में काफी गिरावट आ गई।

यहाँ आम पाठक के मन में यह सवाल उठना स्वाभाविक है कि आखिर नेतृत्व में भटकाव क्यों हुआ? कैसे हुआ? लेखक ने इसका सीधा एवं सटीक उत्तर पुस्तक में दिया है कि देश का नेतृत्व करने वाले लोग बुनियादी समझ विकसित नहीं कर पाए। जिसके कारण समाज का बुनियादी ढ़ाँचा बिखर गया। एक ओर जहाँ हमारे देश का नेतृत्व सामाजिक जरूरतों के अनुसार बुनियादी ढ़ाँचा विकसित नहीं कर पाए वहीं दूसरी ओर अंग्रेजों ने इस बिखराव की आग में घी डालने का काम किया। उन्होंने हमारी कमजोरी को अपना शासन चलाने का हथियार बनाया। कालान्तर में व्यवस्था ऐसी विकसित हुई कि देश की जितनी भी संस्थाएं हैं आज मूल्यहीनता की शिकार हैं। वे समाज को मार्ग दिखाने में अक्षम है। भारतीय संस्थाओं के पास न तो समकालीन समाज जीवन व्यवस्था का अनुभव है, न ही उसके दर्द का अनुभव है। अगर सही मायने में कहा जाए तो भारतीय नेतृत्व के पास आज यह सबसे बड़ी बुनियादी कमजोरी है।

अगर आजादी के कालखंड में या उसके बाद हम गाँधी जी के विचारों को देखें तो कह सकते हैं कि गाँधी जी ने हमेशा हाशिए पर खड़े आदमी को ध्यान में रखकर योजना बनाने की बात कही थी। लेकिन यदि 1950 के बाद की नीतियों को ही देखें तो यह निवेश बढ़ाने वाली तो रही लेकिन यह समाज जीवन के अनुसार रोजगार बढ़ाने वाली भी रही। लेखक का मानना है कि बिखराव एवं असमानता के मुद्दे पर रही सही कसर 1991 के बाद के आर्थिक सुधारों ने पूरी कर दी। गलत नेतृत्व एवं गलत नीतियों के कारण असमानता शर्मनाक स्तर पर पहुँच गई है।

भारतीय अर्थव्यवस्था का समग्र अध्ययन करने में यह पुस्तक पाठकों के लिए दर्पण का कार्य करेगा। प्रामाणिकता के साथ तथ्यों एवं सारणियों के प्रयोग से पुस्तक शोध कार्यों के लिए उपयोगी होगा। विजन बुक्स द्वारा प्रकाशित यह पुस्तक कलेवर एवं छपाई में भी उच्चकोटि का है। ❑

अस्थिर पड़ोस और हमारा राजनय

हमें यह एहसास होना चाहिए कि चीन और पाकिस्तान द्वारा दोनों मोर्चो पर एक साथ घेराव को तोड़ने के लिए केवल सामरिक नीति ही नहीं, राजनय का भी उपयोग आवश्यक है इस मायने में जापान हमारे लिए एक गुणात्मक तत्व के रूप में सामने आ सकता है। जापान को लगता है कि चीन की ताकत को सीमित करना उसके लिए आवश्यक है और इसके लिए इस पूरे क्षेत्र के उन सभी भुक्तभोगी देशों के साथ सहयोग करना चाहिए।

■ जवाहरलाल कौल

हमने लद्दाख में विश्व के सबसे ऊंचे हवाई अड्डे पर अपना सैनिक विमान सुपर हरक्यूलिस उतार कर यह तो दिखा दिया कि हम चाहें तो दौलतबेग ओल्डी समेत लद्दाख के सभी सीमावर्ती क्षेत्रों की रक्षा करने के लिए सक्षम हैं, लेकिन इससे चीन का लुकाछिपी का खेल रुकेगा नहीं। चीन हमें थका तो देना ही चाहता है, वह सीमाओं पर हमारी चौकसी की थाह भी लेना चाहता है। हम जब तक उसे यह करने देंगे तब तक वह करता ही रहेगा। चीनी सैनिकों का हमारी सीमा के भीतर आना–जाना चलता ही रहेगा। लेकिन सुपर हरक्यूलिस का दौलतबेग ओल्डी में अब उतरना यह दिखाता है कि हम अब तक गफलत में सोए रहे या फिर 'हिंदी–चीनी भाई–भाई' जैसी ही किसी भावना के वशीभूत पता नहीं किस बात की प्रतीक्षा करते रहे।

1962 से पहले जब इसी लद्दाख में चीनियों ने घुसपैठ करके कई भारतीय सैनिकों को मार दिया था तो सैनिक अधिकारियों और विशेषज्ञों ने सरकार को सलाह दी थी कि चीन के इरादों को देखते हुए अपनी सेना को बेहतर हथियारों से लैस करना चाहिए। लेकिन तब के प्रधानमंत्री और उनके अंतरंग सलाहकार रक्षामंत्री कृष्ण मेनन ने कहा था कि हथियारों की आवश्यकता ही क्या है!

हम जानते हैं कि हमारे पड़ोस में पाकिस्तान के भी इरादे नेक नहीं हैं। पिछले पैंसठ सालों के अनुभव के बाद हम जानते हैं कि पाकिस्तान भारत को नीचा दिखाने के लिए चीन के साथ सैनिक गठबंधन में आ सकता है। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार वह अब तक अमेरिका के साथ था।

हमें यह भी एहसास होना चाहिए कि दोनों मोर्चो पर एक साथ घेराव को तोड़ने के लिए केवल सामरिक नीति ही नहीं, राजनय का भी उपयोग आवश्यक है। दोनों देश –चीन और पाकिस्तान– जानते हैं कि इस समय सीमाओं पर भारत के साथ होने वाली छोटी–मोटी घटनाओं का भारत भी वैसी ही जवाबी कार्रवाई करके प्रतिक्रिया देगा लेकिन ये घटनाएं व्यापक पैमाने पर युद्ध में नहीं बदल सकती हैं क्योंकि भारत यही कोशिश करेगा कि इस समय जंग में कूदने की मजबूरी पैदा न हो।

भारत ने बहुत देर से ही सही, दक्षिण–पूर्व एशिया के देशों की ओर बढ़ना आरंभ किया है। दक्षिण–पूर्व के कई देशों को चीन के विस्तारवाद से खतरा महसूस होने लगा है। हिंद महासागर में चीन की सक्रिय दखल का असर मलयेशिया और इंडोनेशिया समेत कई और देशों पर पड़ रहा है। लेकिन भारत ने अब तक नेतृत्व की क्षमता का प्रदर्शन नहीं किया है।

हमारी स्वाभाविक कमजोरी एक निश्चित लक्ष्य और दिशा का अभाव है। हिंद महासागर के इन देशों को इस बात का विश्वास नहीं है कि भारत पर लंबी दूरी तक भरोसा किया जा सकता है। लेकिन हाल ही में एक और कमजोरी भी हमें निर्णायक भूमिका निभाने से रोक रही है– हमारी आर्थिक गतिहीनता। दक्षिण–पूर्व के देशों ने पिछले दशक में अचानक असाधारण विकास दर का प्रदर्शन किया था। एशियन टाइगर्स के नाम से मशहूर ये देश उस गति को बरकरार नहीं रख पाए। भारत भी विकासमान था और वैश्विक मंदी के दौर में भी हमारी आर्थिक स्थिति ठीकठाक रही। लेकिन अब वह बुलबुला भी फूट गया है।

सबसे बड़ी बाधा है कि चीन के मुकाबले भारत को कमजोर विकल्प माना जाता है, इसलिए किसी व्यापक गठबंधन की संभावना कम ही दिखाई देती है। इस मायने में जापान हमारे लिए एक गुणात्मक तत्व के रूप में सामने आ सकता है। सामरिक मामलों में जापान की अब तक सीमित भूमिका रही है क्योंकि जापान ने दूसरे विश्वयुद्ध के बाद स्वेच्छा से सैनिक हस्तक्षेप से किनारा कर लिया था। हिरोशिमा और नागासाकी पर परमाणु बम गिरने के बाद जापान में परमाणु हथियारों के खिलाफ भावना बन गई थी।

जापान ने परमाणु बिजली के विकास में काफी प्रगति की है लेकिन दूसरे देशों को इस प्रकार की टेक्नोलॉजी देने से पहले वह परमाणु नियंत्रण संधि पर हस्ताक्षर करने का आग्रह करता रहा है। अपने स्थानीय बचाव के लिए जापान ने एक छोटी सेना और नौसेना रखी हुई है। लेकिन अब इस नीति में बदलाव के संकेत मिल रहे हैं। नए प्रधानमंत्री शिंजो एबे चाहते हैं कि जापान इस नीति को बदले और हिंद महासागर के आसपास के इलाकों में सक्रियता दिखाए। इस नीति के पीछे चीन की बढ़ती आकांक्षाएं हैं और जापान के साथ कई टापुओं पर उसका विवाद भी। सैन्यीकरण के विरुद्ध जापान के संविधान में स्पष्ट निर्देश है, लेकिन प्रधानमंत्री शिंजो एबे इसमें संशोधन की वकालत करते हैं। जापानी जनमत भी अब इसके पक्ष में हो गया है। क्योंकि एबे को इस बार भारी बहुमत से विजय प्राप्त हुई है इसलिए माना जाता है कि एक–दो वर्षों में ही जापान इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण शक्ति के रूप में सामने आएगा। दिलचस्प बात यह है कि अपने एक राजनीतिक बयान में जापानी प्रधानमंत्री ने 'वृहत्तर एशिया' का नारा दिया है जिसके एक सिरे पर भारत होगा तो दूसरे सिरे पर जापान। इस प्रकार हिंद महासागर से प्रशांत महासागर के बीच यह सुरक्षा सेतु एशिया के इतिहास की बहुत बड़ी घटना होगी। ❑

रपट

स्वदेशी जागरण मंच की कार्यसमिति (17, 18 अगस्त) के द्वारा जारी प्रेस विज्ञप्ति

बाली सम्मेलन में राष्ट्रीय हितों की सुरक्षा हो

विश्व व्यापार संगठन के गठन के बाद, पिछले 18 वर्षों से भी अधिक समय के अनुभव से अब स्पष्ट हो चुका है कि यह पूरे विश्व के लिए अमंगलकारी व्यवस्था है। विकासशील और विकसित दोनों प्रकार के देशों की जनता की समस्याएं पहले से अधिक जटिल हुई है। स्वदेशी जागरण मंच की यह स्पष्ट मान्यता है कि विश्व व्यापार संगठन का जन्म बहुराष्ट्रीय कंपनियों के लाभ के लिए निर्मित भूमंडलीकरण की नीति का एक हिस्सा ही था। इसी वृहत साजिश के तहत बहुराष्ट्रीय कपंनियों के हित साधन हेतु विकसित देशों की सरकारों के दबाव में भारत सहित दुनिया के अन्य विकासशील देशों में भी नई आर्थिक नीति के नाम पर नीतिगत परिवर्तन करवा कर इन बहुराष्ट्रीय कंपनियों के मार्ग को प्रशस्त किया गया।

आज भारत इस नीति के दुष्परिणामों को भुगत रहा है। रूपये और डॉलर की विनिमय दर 1990–91 में 16 रूपये से 65 रूपये प्रति डॉलर से भी अधिक तक पहुंच चुकी है। देश की जनता भयंकर बेरोजगारी, गरीबी, और मंहगाई के दंश को झेल रही है। गलत आंकड़ों से बेरोजगारी और गरीबी को छुपाने का प्रयास किया जा रहा है। बढ़ती कृषि लागतों और अपने उत्पाद का उचित मूल्य न मिलने के कारण लाखों किसान आत्महत्या करने को मजबूर हो रहे हैं। विदेशी कंपनियां भारत में खूब लाभ कमाकर अपने देशों को अंतरित कर रही है। बढ़ते आयात, गैरकानूनी अंतरणों और लाभों को अपने–अपने देशों को ले जाने की प्रवृत्ति से भारत को खतरनाक घाटे को ही सहना नहीं पड़ा रहा, देश भयंकर विदेशी कर्ज के जाल में फंस भी रहा है। गौरतलब है कि मात्र 4 वर्षों में भारत का विदेशी कर्ज 2009 में 224 अरब डॉलर से बढ़कर 400 अरब डॉलर तक पहुंच चुका है।

इस पृष्ठभूमि में दिसंबर 3–6, 2013 में बाली (इंडोनेशिया) में विश्व व्यापार संगठन का नवां मंत्रीस्तरीय सम्मेलन प्रस्तावित है। ध्यात्वय है कि दोहा मंत्रीस्तरीय सम्मेलन के बाद दोहा विकास वार्ताओं का दौर शुरू होना था, लेकिन पिछले 4 मंत्रीस्तरीय सम्मेलनों से विकसित देशों द्वारा अपनी कृषि सब्सिड़ी को नहीं घटाने की हठधर्मिता के कारण, विश्व व्यापार संगठन में वार्ताओं का क्रम ठप्प हो चुका है। अमरीका और यूरोप सहित विकसित देश अपनी आर्थिक ताकत के बलबूते पर अपने किसानों को भारी सब्सिड़ी देते हैं, जिसके कारण उनकी डेयरी और कृषि उत्पाद सस्ते होते हैं, जिनसे भारत के कृषि उत्पाद प्रतिस्पर्द्धा नहीं कर सकते। विश्व व्यापार संगठन के गठन के समय किए गए समझौतों में विकसित देशों ने अपनी कृषि सब्सिड़ी को समाप्त करने का वादा किया था, जिससे अब वे मुकर रहे हैं। भारत सहित विकासशील देश अभी तक विकसित देशों द्वारा सब्सिड़ी समाप्त करने पर अडिग रहे हैं। यह देश की कृषि को बचाने के लिए अतिआवश्यक है।

हाल ही के महीनों में अमरीका के दबाव में सरकार के उस संकल्प में ढिलाई आई है, जो देश के कृषि और डेयरी के लिए विनाशकारी तो है ही, देश के उद्योग और सेवा क्षेत्र के लिए भी अशुभकारी है। गैर कृषि बाजार उपलब्धता (नामा) के तहत विकसित देशों से भी ज्यादा आयात शुल्क घटाने की प्रतिबद्धता देने के लिए भी सरकार मन बना चुकी है।

हाल ही में भारत के पेटेंट कार्यालय द्वारा अनिवार्य लाईसेंस दिये जाने, धारा 3 (1 डी) के अंतर्गत नावोर्टिस को 'ग्लीवेक' के लिए पेटेंट नहीं देने सहित मामलों से घबराई विदेशी कंपनियां अब अपनी सरकारों के माध्यम से विश्व व्यापार संगठन के अंतर्गत पेटेंट कानूनों में बदलाव की कवायद में है, जिसके बारे में सजगता और दृढ़ता की जरूरत है। विकसित देशों पर दबाव बनाने की जरूरत है कि श्रम के अबाध प्रवाह का प्रावधान विश्व व्यापार संगठन में होना चाहिए।

स्वदेशी जागरण मंच का निश्चित मत है कि अपना कार्यकाल पूरी कर चुकी सरकार को चुनाव से पूर्व किसी भी प्रकार का अंतर्राष्ट्रीय समझौता करने का नैतिक अधिकार नहीं है। अतः सरकार को बाली में आने वाली सरकार के लिए कठिनाई पैदा करने वाली किसी भी प्रकार का समझौता या प्रतिबद्धता से बचे।

स्वदेशी जागरण मंच की कार्यसमिति सरकार को आगाह करती है कि विश्व व्यापार संगठन में देश के हितों के साथ समझौता न किया जाए और जब तक विकसित देश कृषि सब्सिड़ी समाप्त नहीं करते, तब तक किसी भी प्रकार के नए मुद्दों पर बातचीत न हो।